'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४७] माघ-फाल्गुन २०४५ वि० : फरवरी-मार्च १९८९ [सं० ११-१२

बिहार शाक्त-सम्मेलन की दो गोष्ठियाँ — आवरण-पृष्ठ २

१ महा-कुम्भ, प्रयाग २०४५ वि० (१९८९)–शाक्त-गोष्ठी — १

२ श्री ललिता-विजयम् : पूज्य श्री १००८ श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती, त्रिचि, तमिलनाडु — ३

३ अद्वैत-शक्ति-साधना सत्सङ्ग, सहरसा (बिहार) का ५ वाँ अधिवेशन — ५

४ दरभङ्गा में १२ अप्रैल से १५ अप्रैल, १९८९ तक शाक्त-सम्मेलन — ५

५ मायेर प्रेमी-मण्डल : श्री अभयानन्दनाथ — ६

६ हिन्दी पुरश्चरणोल्लास (मूल पाठ-सहित) — १-४०

प० पू० तपस्वी कल्याण बाबा उदासीन महाराज : श्रीहनुमान वकील — आवरण-पृष्ठ ३

भगवती दुर्गा : 'कौलाचार्य' पं० नथमल दाधीच, सीकर, राजस्थान — आवरण-पृष्ठ ४

सूचना

१––महा-कुम्भ, प्रयाग १९८९ के कारण 'चण्डी' वर्ष ४७ का माघाङ्क समय पर प्रकाशित नहीं हो सका। अतः माघ-फाल्गुन २०४५ (फरवरी-मार्च ८९) का संयुक्त अङ्क प्रकाशित किया जा रहा है। इस संयुक्त अङ्क की पृष्ठ-संख्या दो अङ्कों के अनुरूप दुगनी है।

२––'चण्डी' का नया ४८ वाँ वर्ष चैत्र २०४६ वि०––अप्रैल ८९ से प्रारम्भ हो गया है। नये ४८वें वर्ष में प्रति मास केवल सामान्य अङ्क प्रकाशित होंगे। विशेषाङ्क-प्रकाशन-सम्बन्धी कोई निर्णय नहीं लिया गया है। प्रकाशन-सम्बन्धी सुविधा होने पर ही इस सम्बन्ध में सूचित किया जायेगा।

'चण्डी' के नए ४८ वें वर्ष में १२ सामान्य अङ्कों का वार्षिक शुल्क वर्ष ४७ के सदस्यों के लिये ४५-०० रु० ही रहेगा। अतः सभी सदस्यों से विनम्र निवेदन है कि अपना सदस्यता-शुल्क ४५-०० रु० मनीआर्डर द्वारा ३० अप्रैल ८९ तक, अवश्य भेजने की कृपा करेंगे।

बिहार शाक्त-सम्मेलन की दो गोष्ठियाँ

११ फरवरी, ८६ को श्री पं० कृष्णमुरारी तिवारी की अध्यक्षता में हुई गोष्ठी में—सर्व-सौ० श्रीमती सावित्री श्रीवास्तव, सर्व-श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव, विजय वत्स, नारायण मिश्र, बालेश्वर झा, विमलनाथ झा, वीरेन्द्र गिरि, जनार्दन तिवारी, सर्व-सौ० श्रीमती भारती सिन्हा, सर्व-श्री एस. के. सहाय, नवीननाथ मिश्र, निर्मलकुमार मिश्र, भवानन्द मिश्र आदिकुल १४ व्यक्तियों ने भाग लिया।

इस गोष्ठी के आयोजन में श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव के उदार सहयोग का उल्लेख अत्यन्त प्रासङ्गिक है। उन्होंने न केवल सम्मेलन को कार्यालय की सुविधा प्रदान की है, पुस्तकों की सुरक्षा हेतु आलमारी भी दी है। सम्मेलन के लिए 'पैड' उन्होंने छपवा दिया है, कैश-मीमो और साइनबोर्ड भी बनवा देने का आश्वासन दिया है। गोष्ठी में भाग लेनेवालों के जल-पान की व्यवस्था स्वयं करने हेतु वे सदैव आग्रही रहते हैं। सम्मेलन की जो भी भावी उपलब्धियाँ होंगी, उनके लिए सम्मान्य श्रीवास्तव जी के योग-दान को सदा सादर स्मरण किया जायगा, इसमें सन्देह नहीं।

'गुप्तावतार' पूज्य बाबाश्री, परम पूज्य 'कौल-कल्पतरु' बप्पाश्री, 'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी, पूज्या माई जी जैसी आधुनिक युग की गुरु-पंक्तियों का सश्रद्ध स्मरणपूर्वक 'श्रीनाथादि-गुरु-त्रयं……' की वन्दना से उक्त गोष्ठी प्रारम्भ हुई।

सम्मेलन की संगठन-सम्बन्धी समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ। ज्योतिष पर विशद चर्चा हुई। उपस्थित बन्धुओं में ज्योतिष के प्रति कुछ ज्यादा ही रुचि और जिज्ञासा थी। श्री वीरेन्द्र गिरि अपने उद्बोधक उद्गारों से बड़े प्रभावी रहे। उपाध्यक्ष श्री निर्मलकुमार मिश्र ने कई व्यक्तियों की हस्त-रेखायें देखीं। उन्होंने रत्नों के प्रभाव पर संक्षिप्त किन्तु सार-गर्भित व्याख्यान दिया। उन्होंने बताया कि 'रत्नों को हम अँगुलियों में ही धारण करते हैं क्योंकि वे ऊर्जा-ग्रहण की केन्द्र-स्वरूपा हैं। हमारी संस्कृति में गुरु-जनों के पैर छूने और उनके द्वारा सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद देने में भी यही रहस्य छिपा है। अँगुलियाँ कोणीय होती हैं, जिससे ऊर्जा ग्रहण करने में और ऊर्जा का संचार करने में सक्षम हैं। आधुनिक विज्ञान ने भी इस तथ्य को माना है। भौतिकी के सिद्धान्तानुसार नोकों से विद्युत्-विसर्जन की क्रिया अपेक्षाकृत अधिक होती है। किरलीन फोटोग्राफी से अब तो इस विद्युत्-सम्प्रेषण का चित्र भी लिया जा चुका है।''

अध्यक्ष श्री कृष्णकुमारी तिवारी ने कहा कि ''हमें बैठकों में जिज्ञासुओं का अधिकाधिक ज्ञान-वर्द्धन करने में रुचि रखनी चाहिए, जिससे वे शाक्त-धर्म की गौरवशाली परम्पराओं और वैज्ञानिक क्रिया-पद्धति से लाभान्वित हों तथा हमारी भावी पीढ़ी अपने पूर्वजों को इस अनमोल धरोहर से वंचित न रहे।'' श्री तिवारी ने शक्ति-पूजन की प्रारम्भिक विधियाँ भी बताईं। श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव ने तन्त्र-विषयक अपने कई अनुभव सुनाये, जिससे उपस्थित बन्धुओं की रुचि और भी बढ़ी। 'सम्मेलन' के आय-व्यय को सुचारु बनाने और 'सम्मेलन'—विषयक समाचार 'सम्पादक की वाणी' में प्रकाशित करने हेतु 'वाणी' के सञ्चालकों को कुछ मासिक सहयोग-राशि समर्पित करने का निर्णय लिया गया।

११ मार्च, ८६ को पूर्व-वत् गुरु-वन्दना से गोष्ठी प्रारम्भ हुई। सर्व-सौ० श्रीमती सावित्री श्रीवास्तव, सर्व-श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव, वीरेन्द्र गिरि, जनार्दन तिवारी, विजय वत्स, भास्करानन्द मिश्र, विभूतिनारायण श्रीवास्तव—कुल ७ व्यक्तिही उपस्थित थे। इस दिन बूँदा-बाँदी के कारण उपस्थिति कम रही। फिर भी सोत्साह सारी कार्यवाही सम्पन्न हुई। श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव ने अध्यक्षता की और उन्होंने मुद्राओं का महत्त्व बताने के साथ ही कुछ मुद्रायें बनाकर दिखाईं भी, जिससे उपस्थित लोगों को बहुत अच्छा लगा।

पं० भास्करानन्द मिश्र ने अत्यन्त सरल भाषा में मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र की व्याख्या करते हुए कहा कि ''मन्त्र हमारी वाणी है, यन्त्र हमारा शरीर है और तन्त्र एक प्रणाली, जिससे उचित संस्कारों से हम वाणी और शरीर को सुसंस्कृत करते हुए आत्म-विकास और जाग्रति का कल्याणकारी फल प्राप्त करते हैं।''

धन्यवाद-पूर्वक गोष्ठी विसर्जित हुई। अगली गोष्ठी के लिए ८-४-८६ को होगी।—विजय वत्स, सचिव/१२-३-८६

महा-कुम्भ, प्रयाग २०४५ वि०—१९८९ ई०

शाक्त-गोष्ठी

"तन्त्र-शास्त्र अति पुरातन आगम ग्रन्थ हैं और शक्ति-उपासना अत्यन्त प्राचीन साधना-पद्धति है, किन्तु आज के भौतिक युग में इनका गलत स्वरूप जन-मानस के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसके कारण समाज में इस श्रेष्ठ साधना के बारे में तरह-तरह की भ्रान्तियाँ फैली हैं।"

उक्त उद्गार 'अ० भा० शाक्त-सम्मेलन' के तत्त्वावधान में, महा-कुम्भ के अवसर पर १३ फरवरी, ८९—माघ शुक्लाष्टमी २०४५ सोमवार को 'चण्डी कार्यालय' में आयोजित गोष्ठी में विद्वानों ने व्यक्त किए।

'अ० भा० शाक्त-सम्मेलन' के उपाध्यक्ष पं० गोविन्दशरण उपाध्याय ने कहा कि "शक्ति-उपासना इस देश में सार्व-कालिक सर्व-श्रेष्ठ साधना रही है। बिना शक्ति के मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं रह सकता, किन्तु इस मार्ग को शिशु-वत् समर्पण की भावना से अङ्गीकार करना चाहिए, तभी माई जगदम्बा की कृपा व आशीर्वाद भक्त को मिल सकता है।

"शक्ति-उपासना में बड़ी सजगता की आवश्यकता होती है और फिर शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति के लिए तो यह सजगता और भी बढ़ जाती है। आज तन्त्र-शास्त्र व शक्ति-उपासना के बारे में जिस तरह लोग अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं, उससे न तो उनका भला होगा और न ही समाज का, उल्टे जन-मानस इस सर्वथा कल्याण-कारी साधना से, भ्रान्तियों के कारण, भाग खड़ा होता है। इन्हीं भ्रान्तियों के निवारण के लिए १९४२ के कुम्भ-मेले के अवसर पर 'शाक्त-सम्मेलन' की स्थापना प्रयाग में की गयी थी।

"शाक्त-सम्मेलन का उद्देश्य यही रहा है कि भगवती के भक्तों को जहाँ एक ओर सही मार्ग-दर्शन प्रदान कराया जाय, वहीं दूसरी ओर उन्हें तन्त्र-शास्त्र के दुर्लभ प्रामाणिक ग्रन्थों को सुलभ कराया जाय। इसी उद्देश्य से 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के तत्कालीन सम्पादक एवं तन्त्र-शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् साधक पं० देवीदत्त शुक्ल की प्रेरणा से 'चण्डी' मासिक पत्रिका का शुभारम्भ गङ्गा, यमुना और सरस्वती के पावन सङ्गम-तट पर प्रयाग नगरी में किया गया, जो आज भी न केवल भारत में, वरन् विदेशों में भी सहस्राधिक जिज्ञासुओं का मार्ग-दर्शन कर रही है।"

'चण्डी' मासिक पत्रिका के मानद सम्पादक पं० रमादत्त शुक्ल ने कहा कि "भारत-जैसे धर्म-प्राण देश में विभिन्न धर्मों और धर्मावलम्बियों को फलने-फूलने का पूरा अवसर मिला है। सनातन धर्म की विभिन्न साधना-पद्धतियों में शक्ति-उपासना और तन्त्र-साधना सर्वोपरि रही हैं। इतिहास पर दृष्टि डालें, तो हम पाएँगे कि इस लोक-मङ्गल-कारिणी साधना पर विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा प्रहार किए गए, किन्तु न केवल यह साधना-पद्धति चलती रही, वरन् लोगों का कल्याण करती रही।

"इस साधना के मार्ग पर विधि-वत् चलकर साधक 'शिवत्व' की प्राप्ति कर सकता है, किन्तु पहले उसे सच्चा साधक बनना पड़ेगा। शास्त्रों में कहा गया है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' अर्थात् देवता बनकर देवता की उपासना हो पाती है। इसके लिए साधक को निष्काम, समर्पित तथा साध्य-परक साधना अङ्गीकार करनी पड़ती है, किन्तु आज के भौतिकता-वादी युग में हर व्यक्ति तुरन्त चमत्कार की चाह करता है, ताकि उसकी समस्त मनो-कामनायें आनन-फानन में पूर्ण हो जाएँ। ऐसे लोगों के लिए तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र तथा शक्ति-उपासना के नाम पर अनेक दूकानें खुल गई हैं, जहाँ जाकर न केवल लोग भ्रमित ही होते हैं, वरन् तन्त्र-शास्त्र के प्रति उदासीन भी हो उठते हैं।

"अ० भा० शाक्त-सम्मेलन अपने स्थापना-काल से ही शक्ति-उपासना के प्रचार-प्रसार तथा प्रामाणिक पुस्तकों को सुलभ कराने में लगा हुआ है। न केवल भारत, वरन् विदेश के तन्त्र-प्रेमी-जन भी उसके द्वारा प्रकाशित शोध-पूर्ण साहित्य के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। वर्षों पूर्व स्वीडेन विश्व-विद्यालय के शोध-छात्र श्री गुन्नार एण्डर्सन ने दुर्लभ तान्त्रिक ग्रन्थ 'कुलार्णव तन्त्र' पर अनूठा शोध-कार्य किया। फ्रांस का एक शोध-कर्ता तन्त्रोक्त न्यासों पर जानकारी प्राप्त करने हेतु 'चण्डी' कार्यालय कुछ वर्षों पूर्व आया। अभी हाल में एक अमरीकी युगल श्री विद्या के सादि-क्रम पर शोध करते हुए हमारे सम्पर्क में आये हैं। इस प्रकार जब विदेशी लोग तन्त्र-विद्या पर शोध-कार्य कर रहे हैं, तब हम भारतीयों को तो इसके उन्नयन एवं प्रचार-प्रसार के लिए, आत्म-प्रचार और स्वार्थ से परे रहते हुए, आगे आना ही चाहिए।"

'अ० भा० शाक्त-सम्मेलन' के अध्यक्ष एवं विश्व-हिन्दू-परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष पं० शिवनाथ काटजू (अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश) ने कहा कि "शक्ति-उपासना पर प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध कराने के लिए १९४२ के कुम्भ के अवसर पर मेरे गुरुदेव कौलावधूत पं० देवीदत्त शुक्ल ने शाक्त-सम्मेलन की स्थापना की थी और 'चण्डी' मासिक पत्रिका का सूत्रपात किया था। हिन्दी-जगत् तो पं० शुक्ल की अनुपम राष्ट्र-भाषा-सेवा से परिचित है ही, किन्तु उन्होंने तन्त्र-शास्त्र एवं शक्ति-उपासना के प्रचार-प्रसार के लिए जो युगान्त-कारी कार्य किया है, वह अविस्मरणीय है।"

'चण्डी' के प्रबन्ध सम्पादक श्री ऋतशील शर्मा ने 'चण्डी' की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए शक्ति-उपासना पर प्रामाणिक साहित्य प्रकाशित करने हेतु 'कल्याण मन्दिर प्रकाशन' की पुस्तकों की चर्चा की और बताया कि "पिछले दिनों 'बिहार में शक्ति-साधना' नामक पुस्तक (मूल्य १० रु०) और 'चण्डी' में बिहार के शक्ति-पीठों और देवी-मन्दिरों पर लेखों के प्रकाशन के साथ ही पटना में 'बिहार शाक्त-सम्मेलन' की स्थापना हो चुकी है। इसी प्रकार बम्बई में 'पं० देवीदत्त शुक्ल शताब्दी-समारोह' के आयोजन के फल-स्वरूप 'मुम्बई शाक्त सम्मेलन' भी अस्तित्व में आ गया है। इस प्रकार शाक्त-साहित्य के प्रकाशन के साथ-साथ शाक्त-सङ्गठन का कार्य भी प्रगति पर है।"

गोष्ठी में देश के कोने-कोने से आये शाक्त बन्धुओं ने बड़े उत्साह से भाग लिया, जिनमें मुम्बई (महाराष्ट्र) के पं० वेणीमाधव त्रिपाठी, पं० दामोदर मिश्र शास्त्री, श्री अंजारिया अधिवक्ता, पं० प्रभातकुमार तिवारी, श्री शशांक दवे; भुवनेश्वर (उड़ीसा) के श्री महामेधानन्दनाथ, गंजाम के श्री बसन्तिया; पटना (बिहार) के पं० गोविन्दशरण उपाध्याय, श्री विजय वत्स, श्री वीरेन्द्र गिरि, पं० जीवेश्वर मिश्र, श्री सुखराम दासी संस्थापिका उदासीन आश्रम, भागलपुर (बिहार) के श्री अनिलकुमार सिनहा; श्री चन्द्रशेखर, नदिया (बंगाल) के श्री अश्विनीकुमार शर्मा, श्री नगेन्द्रनाथ सरकार; सीकर (राजस्थान) के श्री सीताराम बाबा, बगड़िया; अम्बाजी (गुजरात) के महन्त श्री हरदेव जी गिरि, अहमदाबाद (गुजरात) के श्री भास्कर व्यास, श्री कान्ति भाई पटेल; मथुरा (उ. प्र.) के पं० सुरेन्द्रनाथ शास्त्री चतुर्वेदी आदि के शुभ नाम उल्लेखनीय हैं।

'कौल-कल्पतरु चण्डी' मासिक [हिन्दी] के स्वामित्व तथा तत्सम्बन्धी विवरण

१—प्रकाशन का स्थान — प्रयाग (उ० प्र०)
२—प्रकाशन की अवधि — मासिक
३—मुद्रक का नाम — श्री ऋतशील शर्मा
पता — परावाणी प्रेस, प्रयाग—६
४—प्रकाशक का नाम — ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय
५—सम्पादक का नाम — श्री ऋतशील शर्मा
राष्ट्रीयता — भारतीय
६—उन व्यक्तियों के नाम और पते जो इस पत्रिका के मालिक या साझेदार हैं या जो उसकी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं। —

मैं, ऋतशील शर्मा, घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

—ऋतशील शर्मा (प्रकाशक)

श्री ललिता-विजयम्

['चण्डी' वर्ष ४७-—आश्विन, २०४५-अक्टूबर, १९८८ के पृष्ठ २४ के आगे]

पूज्यश्री १००८ श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती, श्रीछाया-पीठं, त्रिचि (तमिलनाडु)

ब्रह्मदेव ने आगे बताया कि "एक बार रुद्र अर्थात् शिव यह भूलकर कि वरदान देने की शक्ति उन्हें परा शक्ति-ब्रह्म से मिली है, भस्मासुर को यह वर दे बैठे कि जिसके सिर पर वह हाथ रखेगा, वह तत्काल भस्म हो जायगा। वरदान पाकर भस्मासुर ने वर की सत्यता की जाँच करने के लिए शिव के ही सिर पर हाथ रखना चाहा। बचने के लिए शिवजी को भागना पड़ा किन्तु भस्मासुर भी उनके पीछे लग गया। तब विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया और भस्मासुर के सामने आ गए। भस्मासुर मोहिनी के रूप से मुग्ध होकर खड़ा रह गया। मोहिनी ने उसे आश्वासन दिया कि 'मैं तुमसे विवाह कर लूँगी, यदि तुम नहा-धोकर स्वच्छ होकर मेरे पास आओ।' स्नान करते समय जैसे ही उसने सिर धोने के लि अपना हाथ अपने सिर पर रक्खा, वह भस्मीभूत हो गया। इस प्रकार उस अवसर पर विष्णु की सहायता से शिव बच गए।

"एक दूसरे अवसर की बात है कि बाणासुर रुद्र का अनन्य भक्त था, विष्णु आदि अन्य देवों की वह कोई परवा नहीं करता था। भगवान् कृष्ण से उस बाणासुर का युद्ध होने लगा, तब अपने भक्त की ओर से रुद्र लड़ने के लिए जा पहुँचे। भगवान् कृष्ण ने महा-परा-शक्ति की वन्दना की और उनकी कृपा से रुद्र को पराजित कर दिया। रुद्र को भागना पड़ा और भगवान् कृष्ण ने बाणासुर की भुजाएँ काट डालीं। बाणासुर को उनके आगे नत-मस्तक होना पड़ा।

"इसी प्रकार जब देव और दानव सागर-मन्थन कर रहे थे, उन्होंने मन्दराचल को मथानी और वासुकि नाग को रस्सी के रूप में ग्रहण किया था। उनकी सहायता के लिए विष्णु ने कच्छप-रूप धारण किया और उनकी पीठ पर मन्थन-कार्य सम्पन्न होने लगा। एक रूप से विष्णु देवों की सहायता कर रहे थे, दूसरे रूप से दानवों की और तीसरे रूप से वे अपने हाथों से पर्वत के शिखर को पकड़े हुए थे। यह सारा अलौकिक कर्म करते समय वे यह भूल गए कि इसे वे पराम्बा की ही शक्ति द्वारा कर पा रहे हैं। उन्हें अहङ्कार हो गया। तुरन्त ही पीड़ा से विकल होकर वासुकि नाग ने विष-वमन किया। उस विष से पीड़ित होकर देव और दानव मन्थन-कार्य छोड़कर इधर-उधर भाग खड़े हुए। विष्णु वहीं बने रहे। विष ने उनके सारे शरीर को प्रभावित किया और वह नीला पड़ गया। गौर-वर्ण के विष्णु नील-वर्ण हो गए और दुखी होकर वे भी वहाँ से भाग चले। यह सब देखकर रुद्र ने महा-परा-शक्ति का ध्यान किया और विष को पी गए। तुरन्त ही पार्वती शक्ति ने, जो महा-परा-शक्ति की ही एक स्वरूप हैं, उनका कण्ठ पकड़ लिया और विष को वहीं रोक दिया। वह उनके शरीर में प्रवेश नहीं कर पाया। इस प्रकार रुद्र की रक्षा हो गई और वे नील-कण्ठ हो गए।

"अहङ्कार से मुक्त होकर विष्णु ने भी महा-परा-शक्ति का ध्यान किया और पुनः देव-दानवों के साथ सागर-मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया।

"इसी प्रकार एक बार और विष्णु गर्वोन्मत्त होकर महा-परा-शक्ति को भूल बैठे थे, जिससे उन्हें हय-ग्रीव का रूप ग्रहण करना पड़ा था।

"सारांश यह है कि हम त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी देवी की माया से, जो विष्णु-माया नाम से प्रख्यात हैं, भ्रमित हो जाते हैं और अहङ्कार में पड़कर अनुचित कर्म कर बैठते हैं, जिससे हमारा पतन होता है और हमें कष्ट भोगना पड़ता है। ऐसी दशा में तुम देवों को दोष देने से क्या लाभ ?

"दक्ष का यज्ञ शिव की उपेक्षा करते हुए आयोजित किया गया था। देवों ने यह नहीं ध्यान दिया कि शिव श्री ललिता महा-परा-शक्ति के महान् उपासक हैं और उस यज्ञ में भाग लिया। फल यह हुआ कि विष्णु-सहित सभी देवों को अपमानित होकर उस यज्ञ को छोड़कर भागना पड़ा। इससे यह प्रमाणित होता है कि महा-परा-शक्ति श्रीललिता-ब्रह्म को भूलकर किए गए अनुचित पाप-मय कर्मों का फल सभी को भोगना पड़ता है।"

[अध्याय—७]

शिष्य—हे श्रेष्ठ गुरुदेव ! ब्रह्मा जी ने न केवल विष्णु और रुद्र आदि की त्रुटियों को बताया है, अपितु उन्होंने अपनी भूलों का भी वर्णन किया है। हयग्रीव जी ने भी, जो ब्रह्मा जी की बातें बताते हैं, स्वयं अपनी त्रुटियाँ बताई हैं। इस प्रकार अपनी स्वयं की भूलों को बताने से क्या देवताओं को उन्हें हेय समझने का अवसर नहीं मिलेगा ? अपने भक्तों, देवताओं और ऋषियों की दृष्टि में अपने को गिराना क्या उनके लिए उचित है ?

गुरु—हे मेरे पुत्र ! जो कुछ ब्रह्मा और हयग्रीव कहते हैं, वह केवल सत्य है। महान् पुरुष अपनी त्रुटियों और कमियों को दूसरों से छिपाते नहीं। वे केवल अपनी त्रुटियों को अनुभव करने और अपने आप को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। अपनी त्रुटियों का उल्लेख वे केवल इस उद्देश्य से करते हैं कि अन्य लोग उन्हें सुनकर और उनके फल-स्वरूप उन्हें जो कष्ट भोगना पड़ा, उसे जानकर सावधान हो जायँ और उस प्रकार की त्रुटियाँ न करें। साथ ही, इस प्रकार वे अपना भी सुधार करते हैं। ऐसा करने से उनकी महत्ता और उनके उच्च-गुणों का ही प्रकाश होता है। विष्णु, ब्रह्मा आदि महा-परा-शक्ति श्री ललिता देवी के महान् उपासक हैं। अत. कभी-कभी देवी को भूल जाने की अपनी त्रुटि पर पश्चात्ताप करते हैं और अपना दुःख प्रकट करते हैं। यही सच्चे उपासकों का स्वभाव है। ऐसे ही कर्मों द्वारा वे दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। जो कुछ भी वे कहते हैं, उससे महा-परा-शक्ति की असीम महिमा का ही प्रतिपादन होता है। विष्णु, ब्रह्मा आदि उस महा-परा-शक्ति के ही स्वरूप मात्र हैं। अतः, पराम्बा की महिमा का गान कर, वे अपनी ही महिमा बढ़ाते हैं।

शिष्य—हे गुरुदेव ! महा-विष के निकलने पर और रुद्र द्वारा उसे पी जाने के बाद क्षीर-सागर से जो कुछ निकला, उसका वर्णन आपने नहीं किया है। कृपया बतायें कि उसमें से और क्या-क्या निकला ? सागर से जो अमृत निकला, क्या उसे दानवों ने भी ग्रहण किया ? कृपया इन सभी बातों को स्पष्ट करें।

गुरु—हे प्यारे शिष्य ! अगस्त्य के प्रश्न करने पर हयग्रीव ने ये सभी बातें बताई हैं। इन बातों का विवरण बताने से छूट न जाय, इस आशङ्का से तुम जब-तब प्रश्न करते हो, यह बड़ी अच्छी बात है। वह सब बताना मेरा कर्त्तव्य है क्योंकि तभी तुम्हारी आशङ्का दूर हो सकेगी और तुम्हें सन्तोष मिलेगा। अतः प्रतिदिन यह बताने के स्थान पर कि हयग्रीव कब रुके और अगले दिन कब प्रारम्भ किया, मैं यथा-सम्भव लगातार उन्हीं बातों का वर्णन करूँगा, जो हयग्रीव ने अगस्त्य को बताईं। साथ ही, जो भी सन्देह बीच-बीच में तुम्हें होंगे, उनका भी निराकरण करने का प्रयास मैं करूँगा।

शिष्य—भगवन् ! आपको गुरु-रूप में पाकर मैं अपने को परम भाग्य-शाली मानता हूँ। कृपया देवी के सम्बन्ध में सभी सत्य बात इस प्रकार समझाकर बतायें कि मैं उन सबको पूर्ण रूप से समझ सकूँ और मुझे किसी प्रकार का सन्देह या मिथ्या ज्ञान न हो।

गुरु—हयग्रीव ने अगस्त्य से कहा : महा-परा-शक्ति का ध्यान कर जब विष्णु ने देव और दानवों के साथ पुनः समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया, तब 'सुरा' नाम की वारुणी देवी सागर से प्रकट हुईं और वे दानवों की ओर बढ़ीं किन्तु दानवों ने माया से मोहित होकर उन्हें स्वीकार नहीं किया। इसी से उनका नाम 'असुर' पड़ गया। तब सुरा देवी देवों की ओर बढ़ीं। उन्होंने झुककर उन्हें प्रणाम किया और उनका स्वागत किया। अतः वे 'सुर' कहलाये।

इसके बाद सागर से सुरभि या कामधेनु निकली, जो सुरों द्वारा पूजनीया थी। तब श्वेत गज ऐरावत निकला, फिर श्वेत अश्व उच्चैःश्रवा। इन्द्र ने उन्हें स्वीकार किया। समुद्र-मन्थन होता रहा और तब सुन्दर अप्सरायें निकलीं। उनके

बाद देव-लोक के वृक्ष--कर्पक और पारिजात आदि निकले। देवताओं ने उन्हें ग्रहण किया। तब चन्द्रमा निकला, जिसे परम शिव ने स्वीकार किया। फिर विष निकला और उसे नागों ने ग्रहण किया। कौस्तुभ नामक एक मणि निकली, जिसे विष्णु ने स्वीकार किया। तब विजया नामक सुगन्धित औषधि निकली, जिसे भैरव ने ग्रहण किया।

तदनन्तर सुसज्जित धन्वन्तरि अमृत-पूर्ण घट लिए हुए प्रकट हुए। उन्हें देखकर सभी प्रसन्न हो उठे। तब ज्येष्ठा का आविर्भाव हुआ, जो पराम्बा के भक्तों को सुख और अभक्तों को दुःख देती हैं। वे असुरों की ओर गईं, जिससे वे शिथिल पड़ गए और भ्रमित हो गए। फलतः समुद्र से निकलनेवाली अन्य किसी उत्तम वस्तु को वे माँग नहीं सके। ज्येष्ठा की छोटी बहन कमलाभा लक्ष्मी देवी अपने हाथ में कमल पुष्प लिए हुई प्रकट हुईं। ऋषियों ने 'श्री-सूक्त' द्वारा उनकी वन्दना की। गन्धर्वों के सङ्गीत और देव-लोक की अप्सराओं के नृत्य के साथ आठों दिशाओं के गजराज गङ्गा, कावेरी आदि नदियों से स्वर्ण-घट में पवित्र जल ले आए और उससे उनका अभिषेक किया। भगवान् को परम प्रिय तुलसी भी सागर से निकलीं। क्षीर-सागर ने सुन्दर स्वरूप धारण कर उन्हें कमल की माला पहनाई, जब कि विश्वकर्मा ने सुन्दर आभूषण समर्पित किए। सबके देखते-देखते सुन्दर माला-धारिणी लक्ष्मी देवी विष्णु के हृदय में प्रवेश कर गईं। तुलसी देवी भी भगवान् से मिल गईं। लक्ष्मी देवी ने अपनी कृपा-दृष्टि से देवों को आशीष दिया, तब देवी ने असुरों की ओर देखा और ज्येष्ठा सुरों से कुछ दूर चली गईं। (क्रमशः)

अद्वैत-शक्ति-साधना सत्सङ्ग, सहरसा (बिहार)

सहरसा (बिहार) से १० मील उत्तर पुरुषोतमपुर ग्राम में पं० कमलकान्त जी मिश्र के 'अद्वैताश्रम' में उक्त संस्था का ५वाँ अधिवेशन सोत्साह सम्पन्न हुआ। १४ नवम्बर, १९८८ को सहरसा कालेज के संस्कृत-विभाग के अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष पं० कृष्णदत्त झा और अवर निबन्ध कार्यालय के अवकाश-प्राप्त श्री अश्विनीकुमारलाल दास की उपस्थिति में परमहंस गोसाईं संस्कृत महा-विद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक पं० रामेश्वर झा द्वारा स्वस्ति-वाचन तथा विघ्नोत्सारण-पूर्वक कलश-स्थापना हुई। व्यास-गद्दी पर पण्डित जी ने आसीन होकर ९ बजे प्रातः से श्रीदेवी-भागवत का पारायण प्रारम्भ किया। एक बजे पारायण समाप्त कर भोजन, विश्राम और तीन बजे से अपनी मधुर भाषा में अर्थ सुनाकर श्रोताओं को उद्बोधित एवं मुग्ध किया। सूर्यास्त तक कथा समाप्त हुई। उसके बाद डेढ़ घण्टे तक 'दश महा-विद्या' नाम का कीर्त्तन हुआ। नौ दिनों तक यही कार्य-क्रम चलता रहा।

२२ नवम्बर को कथा समाप्त होने के बाद हवन और वटुक-कुमारिका-ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न हुआ। २३ नवम्बर से वर्तमान-कालीन दैवी-दुर्घटना-शान्त्यर्थ सर्व-जन-कल्याण हेतु 'सर्व-बाधा-विनिर्मुक्तो०' मन्त्र से सप्तशती का सम्पुट अखण्ड पाठ २५ नवम्बर तक किया गया, जिसके पूर्त्यर्थ नवार्ण मन्त्र से दशांश हवन, तर्पण, मार्जनादि भी सम्पन्न हुए।

१२ अप्रैल से १५ अप्रैल, १९८९ तक शाक्त-सम्मेलन

प्रतिदिन का कार्य-क्रम—प्रातः ४-३० से ७ : जागरण एवं नित्य-कर्म, ६ से ७ : प्रातः-स्मरण एवं ध्यानाभ्यास (श्रीगुरुदेव के साथ), ७ से ८ : साधिकाओं हेतु प्रश्नोत्तर-कार्यक्रम एवं साधकों हेतु महा-विद्या-नाम-सङ्कीर्तन, ८ से १२ : पाठ, जप, हवन आदि, १२-३० से २-३० : भोजन, विश्रामादि।

मध्याह्न २-३० से ४ : सामूहिक सत्सङ्ग एवं प्रश्नोत्तर, ४ से ५ : साधकों के निजी अनुभव एवं हवन।

सायं ५ से ६-३० : प्रवचन, ६-३० से ७-३० : सन्ध्या-कालीन अवकाश एवं प्रश्नोत्तर, ७-३० से १०-३० : जप।

रात्रि ९-३० से : अभिषिक्त साधकों हेतु वीर-पूजा, १०-३० से : शेष साधकों हेतु भोजन एवं विश्राम।

१४ अप्रैल, रात्रि में : ब्रह्म-लीन स्वामी निश्चलानन्द परमहंस के जीवन पर दो घण्टे का एकांकी।

सम्पर्क-सूत्र—श्यामा-सदन, नाग-मन्दिर के पीछे, मिश्र टोला, दरभंगा।

मायेर प्रेमी-मण्डल

श्री अभयानन्द नाथ

'मायेर प्रेमी-मण्डल' के प्रेमी-गणों में सम्मिलित होनेवाले व्यक्ति को पहले देवाधिदेव महादेव के पञ्चाक्षर मन्त्र—'नमः शिवाय'—का सवा लाख जप करना चाहिये या माँ गायत्री का नित्य एक सौ आठ बार जप कम-से-कम तीन-चार महीने करने के पश्चात् किसी प्रेमी-गण के परिचय द्वारा 'सिद्ध-विद्या-पीठ' से परिचित होने के पश्चात् ही विशेष 'संस्कार' द्वारा उसे 'मण्डल' में सम्मिलित किया जाता है। अपने आपको वे भी 'प्रेमी' कह सकते हैं, जो प्रातः उठने से लेकर रात्रि-शयन के पूर्व तक नव-ग्रह-निवारक एवं मुक्ति-दायक 'महा-विद्या-नाम' का जप करते हैं या लिखते हैं या कीर्त्तन करते हैं।

ब्रह्म-लीन श्री १००८ गुरुदेव ने कहा था—"जिन्हें माँ में भक्ति हो, उनका साधनात्मक मार्ग अवश्य प्रशस्त करना चाहिये। माँ की उपासना या तन्त्रोपासना को हम लोग समझते हैं कि अत्यन्त दुरूह है, अतः इस ओर से लोग उदासीन होकर अन्यत्र भटकते रहते हैं। जब कि वास्तविकता यह है कि 'तन्त्र-उपासना' एक सरल वैज्ञानिक पद्धति है और सभी व्यक्ति तन्त्रोक्त 'शक्ति-उपासना' से अपना कल्याण कर सकते हैं। इस कलि-काल में यही एकमेव मार्ग है, जिसमें निश्चय ही आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होते हैं।"

शाक्त-मत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सभी सम्प्रदायों का सम्मान किया जाता है। प्रमाण के लिए शाक्तों का निम्न प्रसिद्ध सिद्धान्त मननीय है—

अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभा-मध्ये तु वैष्णवाः।
नाना-रूप-धरा कौलाः विचरन्ति मही-तले ॥

अर्थात् भीतर से शाक्त-मतावलम्बी, बाहर से शैव और सभा-समाज में वैष्णव-रूप में—इस प्रकार नाना रूपों में कौल साधक भू-तल पर विचरण करते रहते हैं।

शाक्त-मत की ही यह विशेषता है कि वह सम्पूर्ण मानव-समाज में एकात्मकता का दर्शन करता है। यथा—
'सर्वे शाक्ताः द्विजा प्रोक्ता'।

अर्थात् जो भी वर्ण शाक्त-मत में आता है, सभी का संस्कार होने के कारण वे दूसरा जन्म पानेवाले 'द्विज' कहलाते हैं।

परम पूज्य ब्रह्म-लीन श्री १००८ स्वामी निश्चलानन्द परमहंसदेव की परम प्रेरणा के फल-स्वरूप विक्रम सं० २०२६ में श्रीकृष्णाष्टमी की मोह-रात्रि के पावन अवसर पर पाँच साधकों के साथ सहरसा-जिलान्तर्गत कात्यायनी-स्थान में दिन भर माँ गायत्री मन्त्र से हवनोपरान्त सहसा साधकों का मिलना और कौल-धर्म-रक्षार्थ सभी साधक एक साथ मिलकर पूजन-हवन आदि करते रहें, यह प्रेरणा प्राप्त होने के कारण वह शुभ दिन ही 'मायेर प्रेमी-मण्डल' की स्थापना का दिवस माना जाने लगा।

आज ऐसा अनुभव होता है कि ब्रह्म-लीन श्री गुरुदेव ने अपने अन्तश्चक्षु से देखा कि आगे आनेवाली शती आध्यात्मिक शती हो, इसके लिए कलियुग के लिए प्रशस्त सर्व-सुलभ जन-कल्याण हेतु भगवान् शिवोक्त शाक्त-धर्म की समुचित प्रतिष्ठा होनी आवश्यक है। अतः मिथिलाञ्चल-जैसी शाक्त-भूमि में योग्य मार्ग-दर्शन में सभी लोग शाश्वत सनातनी ब्रह्ममयी माँ की कृपा पा सकें, इसके लिए उन्होंने अपने शिष्य एवं दिव्य साधक श्री अभयानन्द को एक बार नहीं, तीन-तीन बार स्वप्न में दर्शन देकर आदेश किया। फलतः उन्हीं की प्रेरणा से माँ में जो प्रेम करते हैं अर्थात् माँ जिन पर प्रेम करती है, उन 'मायेर' अर्थात् माँ के प्रेमियों का उक्त 'मण्डल' अर्थात् समूह बना। इस 'मायेर प्रेमी-मण्डल' नाम से अनायास ही कौल-धर्म-रक्षार्थ साधकों का एक समूह चल पड़ा। यह कोई संस्था नहीं है, अपितु सभी साधकों के एकत्र होने का 'नाम' मात्र ही है।

आज इस 'मण्डल' में महा-साम्राज्याभिषेक-प्राप्त दो, क्रम-दीक्षित तीन, पूर्णाभिषेक-प्राप्त ११, केवल अभिषेक-प्राप्त साधक ५१, साधिकायें २५ एवं दीक्षित साधक-साधिकायें मिलकर ५० हैं। इस 'मायेर प्रेमी-मण्डल' का मुख्य केन्द्र है-- 'सिद्ध-विद्या-पीठ', जहाँ सभी साधक-साधिकायें माँ के दर्शन से अभिभूत अपनी साधना में नित्य नई अनुभूतियाँ प्राप्त कर मायेर प्रेम में आप्यायित-आप्लावित होकर अपने जीवन को सार्थक करते हैं।

शाक्तों में किसी प्रकार का वर्ण-विभेद नहीं माना जाता, अपितु उनमें सम-रसता की भावना है। तभी तो यह उक्ति प्रसिद्ध है कि—'प्रवृत्ते भैरवी-चक्रे सर्वे वर्णाः द्विजोत्तमाः।'

अर्थात् 'भैरवी-चक्र' में सम्मिलित होते ही सभी वर्ण के लोग उत्तम द्विज-स्वरूप बन जाते हैं।

तन्त्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि——

जीवः शिवो शिवो जीवः, न भेदस्य शिव-जीवयोः।
पाश-बद्धो भवेज्जीवः, पाश-मुक्तः सदा-शिवः॥

अर्थात् जीव ही शिव है और शिव ही जीव है। शिव और जीव में कोई भेद नहीं है। पाशों में बँधा हुआ 'जीव' कहलाता है और पाशों से मुक्त होकर वही सदा-शिव बन जाता है।

१ घृणा, २ लज्जा, ३ भय, ४ शोक, ५ जुगुप्सा, ६ कुल, ७ शील और ८ जाति—ये ही अष्ट-पाश हैं।

यहाँ उल्लेखनीय है कि 'जाति' को भी पाश माना गया है। 'शक्ति-उपासना' में जाति-भेद का इसी से निषेध है, जिसका उल्लेख पहले आ चुका है। 'मायेर प्रेमी-मण्डल' इसी एकात्म-भाव से दिनानुदिन अग्रसर हो रहा है। आशा है कि सभी प्रबुद्ध-जन इस मण्डल से कल्याणकारी उद्बोधन प्राप्त करेंगे।

'मायेर प्रेमी-मण्डल' के सदस्य अपने-अपने स्थान पर सत्सङ्गादि करते हुए अपनी साधना को प्रखर बनाये रखते हैं। साथ ही अन्य जिज्ञासु बन्धुओं को संस्कार-सम्पन्न करने हेतु उन्हें सत्संग में सम्मिलित करते हैं। सभी प्रेमी-गण एक दूसरे के परस्पर-पूरक सहयोगी-रूप में सदा भाई-चारे के स्नेह से अभिभूत रहते हैं। आवश्यकतानुसार वे समाज में अपने व्यक्तिगत व्यवहार एवं सेवा के द्वारा तथा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से समाज-सेवा में भी सहयोग करते रहते हैं। चारों नवरात्रों की साधना और विशिष्ट-रात्रियों की साधना तो वे अनिवार्य रूप से करते ही हैं। आइये, हम सभी शाक्त-साधना के द्वारा अपना जीवन आलोकित कर अन्य लोगों को भी प्रेरित कर 'युग-धर्म' का निर्वाह करें।

'मायेर प्रेमी-मण्डल' का सिद्ध विद्या-पीठ

'सिद्ध-विद्या-पीठ' अर्थात् महा-विद्या का स्थान। इनका योनि-पीठ कलियुग के महा-शक्ति-पीठ माँ कामाक्षा में अवस्थित है। अपने स्वरूप में स्थित होने के लिये ये महान् शक्ति-भूमि मिथिला को स्वयं चयन कर आईं। कलि-युगाब्द ५०८७ में जगत्-तारिणी माँ तारा का शुभागमन 'सिद्ध-विद्या-पीठ' गलमा (घनश्यामपुर) दरभंगा में हुआ। युगाब्द ५०८८ में

माँ आद्या-शक्ति काली, महा-काल-भैरव-स्वरूप कामना-लिङ्ग (गणेश, नन्दी एवं महावीर) की प्रतिष्ठा हुई और युगाब्द ५०८६ में महा-त्रिपुर-सुन्दरी, माँ भुवनेश्वरी एवं माँ भैरवी का आगमन हो चुका है। इस प्रकार पाँच महा-विद्यायें आ गईं और अब श्री महा-विद्या आ रही हैं। इस कलि-काल में ये महा-विद्या ही सिद्ध-विद्या हैं, जिनकी साधना से मुमुक्षु-गण अपने साध्य को इसी जन्म में प्राप्त कर सकते हैं।

महा-विद्या-मन्दिर की दक्षिण दिशा में एक यज्ञ-मण्डप है, जिसमें श्रीबटुक-भैरव मुण्डासन पर विद्यमान हैं। इसी में हवन-कुण्ड है, जिसमें सहस्र-चण्डी महा-यज्ञ एवं महा-रुद्र-यज्ञ विगत दो वर्षों में हुए हैं। समय-समय पर हवनादि होते रहते हैं। साधकों के लिये साधना-स्थली भी यही है। इसी यज्ञ-मण्डप में करोड़ों मन्त्र-जप पूर्ण हो चुके हैं। साधकों द्वारा पुरश्चरणादि भी समय-समय पर होते रहते हैं।

ईशान कोण में तन्त्र का पुस्तकालय निर्माणाधीन है। इसमें अनुपलब्ध तन्त्र-साहित्य प्राप्त करके रखा जा रहा है। पाण्डु-लिपि ताड़-पत्र पर एवं मुद्रित विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थ एकत्र किये जा रहे हैं।

पुस्तकालय-भवन निर्मित होने के पश्चात् उसके ऊपर तन्त्र-संग्रहालय निर्माण करने की योजना है। यह संग्रहालय अपने आप में अनोखा होगा। एक ही स्थान में सम्पूर्ण शक्ति-पीठों, सिद्ध-पीठों, महा-शक्ति-पीठों तथा तन्त्र के अप्राप्य उपयोगी परिचय-ग्रन्थ और चित्रादि सुलभ कराये जायेंगे।

मिथिलाञ्चल शक्ति-पूजन का सर्वोत्तम स्थल आदि-काल से रहा है। अतः एक विशिष्ट स्थान पर इसका दिग्दर्शन हो सके तथा उत्तम कोटि की साधना-स्थली बन सके, एतदर्थ न केवल भौतिक दृष्टि से निर्माण हो वरन् तप की भी शक्ति सङ्गठित हो, इसके लिए प्रयत्न चल रहे हैं।

'सिद्ध-विद्या-पीठ' बिल्कुल शान्त एकान्त स्थान में स्थित है। स्थान से चारों तरफ कोई भी गाँव कम-से-कम एक किलोमीटर की दूरी पर है। प्राकृतिक दृश्य—तीन तरफ बगीचे और एक तरफ हरे-भरे पौधों से लहराता क्षेत्र है। 'सिद्ध-विद्या-पीठ' के दो तरफ पितृ-भूमि विद्यमान है। इस कलि-काल में जहाँ वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण से युक्त वातावरण ही आज सर्वत्र शहरी क्षेत्रों में एवं आस-पास विद्यमान है, वहीं 'दरभंगा नगर' से पचास किलोमीटर दूर सर्वथा शान्त स्थान में अवस्थित इस 'सिद्ध-विद्या-पीठ' के परिसर के तनाव-मुक्त क्षेत्र में इस धरा पर एक अद्वितीय स्थान-निर्माण की प्रक्रिया चल रही है। साधकों के द्वारा निरन्तर जप, साधकों के द्वारा सतत पाठ और साधकों के द्वारा अनवरत ध्यान-योग, सत्सङ्गादि यहाँ चलते ही रहते हैं।

'सिद्ध-विद्या-पीठ' एक ऐसा दिव्य स्थान है, जहाँ साधक आकर जप-पुरश्चरणादि अपने निर्धारित समयानुसार कर सकते हैं। साधक-साधिकायें अपने इष्ट के सामने षोडशोपचार-पूजन, पञ्चोपचार-पूजन आदि करते रहते हैं। इस पीठ में भक्त-जनों के मनोवाञ्छित फल सदा प्राप्त होते रहते हैं। माँ अत्यन्त ही तेजस्वी मुद्रा में करुणा का भाव लिये सम्पूर्ण जगत् के पोषण हेतु उद्यत दीख पड़ती हैं।

भाव-त्रय—पशु-भाव, वीर-भाव एवं दिव्य-भाव—किसी भी भाव से साधक अपनी-अपनी साधना यहाँ करते रहते हैं। साधनोपयोगी आवश्यक तन्त्र-साहित्य भी यहाँ सुलभ है, जिसकी सहायता साधक लेते रहते हैं। श्री महानन्दनाथ 'सिद्ध-विद्या-पीठ' में माँ की पूजा-अर्चा में सदा लगे रहते हैं और आनेवाले साधक-साधिकाओं की व्यवस्था में सहभागी भी बनते हैं।

वस्तुतः आज के वर्तमान विपरीत समय में भी यह 'सिद्ध-विद्या-पीठ' साधकों को ऊर्ध्व-मुखी करता है। जैसे-जैसे साधना की गति यहाँ बल पकड़ेगी, वैसे-वैसे ही यह दिव्यस्थान साधकों को अधिकाधिक यथार्थता का बोध करा सकेगा। तो हे साधक-वृन्द! आइये, एक बार हम भी इस स्थान में माँ जगदाराध्या के दर्शन का कुछ अनुभव प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य करें।

ॐ ह्रीं

पुरश्चरण-रसोल्लासः

हिन्दी टीका सहित

प्रथमः पटलः

पुरश्चरण-माहात्म्य, तत्प्रारम्भ-प्रणाली
(पुरश्चरण-माहात्म्य और उसकी प्रारम्भिक प्रणाली)

।। श्रीदेव्युवाच ।।

देव-पूज्य ! महा-बाहो ! संसारार्णव - तारक ! रहस्यं देव-देवेश ! पुरश्चरण - कर्मणः ।।१
अति-गुह्यं महत् - पुण्यं हृदये विद्यते तव । कृपया वद ईशान ! अनुग्राह्या ह्यहं यदि ।।२

श्री देवी ने कहा—हे संसार-रूपी सागर से पार करानेवाले देव-पूज्य, महा-बाहो, देव-देवेश ! पुरश्चरण-कर्म का महा-पुण्य-मय अति गुप्त रहस्य आपके हृदय में विद्यमान है । हे ईशान ! यदि मैं आपकी कृपा-पात्री हूँ, तो कृपया उसे बताइए ।।१-२।।

।। श्रीमहादेव उवाच ।।

अति-गुह्यं महत्-पुण्यं सारात्सारं परात्परम् । सुषुम्ना-गर्भ-मध्यस्थं सर्व - योग - मयं प्रिये ।।३
पुरश्चरण - रसोल्लासं तन्त्रं ब्रह्म - मयं सदा । यज् ज्ञात्वा साधको याति दुर्लभं परमं पदम् ।।४

श्री महादेव बोले—हे प्रिये ! अति गुप्त, महा-पुण्य-मय, सार का भी सार, परात्पर, सुषुम्ना के अन्दर विद्यमान, सर्व-योग-मय 'पुरश्चरणोल्लास' नामक तन्त्र सदा ब्रह्म-स्वरूप है, जिसे जानकर साधक दुर्लभ परम पद को पा जाता है ।।३-४।।

अचिन्त्यमनघं तन्त्रं सदा मम हृदि स्थितम् । एतत् - तन्त्रमविज्ञाय पुरश्चर्यां करोति यः ।
स भ्रष्टः स च पापिष्ठः कथं सिद्धिमाप्नुयात् ।।५
एतत् तन्त्रानुसारेण पुरश्चर्यां करोति यः । स सिद्धः स गणः सोऽपि विष्णुर्न च संशयः ।।६
दिव्य-वीर-वरो लब्ध्वा दीक्षां कृत्वा विचक्षणः ।।७
ततः समाहितो भूत्वा पुरश्चर्यां करिष्यति । किं तस्य ध्यान - पूजायां तस्य सिद्धिरदूरतः ।।८
न च दीक्षा-परं ज्ञानं न च दीक्षा - परं तपः । न च दीक्षा - परं कालं तस्माद् गरीयसी ।।९

यह अचिन्त्य, पाप-रहित तन्त्र सदा मेरे हृदय में स्थित है। इस तन्त्र को जाने विना जो पुरश्चर्या करता है, वह साधना से भ्रष्ट और पापिष्ठ किस प्रकार सिद्धि पा सकता है ? इस तन्त्र के अनुसार जो पुरश्चर्या करता है, वह सिद्ध है, गण है, विष्णु-स्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं। दिव्य और वीर-भाव वाला बुद्धिमान् साधक दीक्षा-संस्कार करा-कर तब सावधान होकर पुरश्चरण करेगा। उसे ध्यान-पूजा में कठिनाई नहीं होती और सिद्धि उसके पास रहती है। ज्ञान दीक्षा के तुल्य नहीं है और न तप दीक्षा के तुल्य है तथा काल भी दीक्षा के समान नहीं है। अतः दीक्षा ही श्रेष्ठ है ।।५-६।।

दीक्षायां चञ्चलापाङ्गि ! न काल-नियमः क्वचित् । सद्-गुरोर्दर्शनाद् देवि ! उपस्थिते सु-पर्वणि ।।१०
शिष्यमाहूय गुरुणा कृपया दीयते यदि । तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं न चान्यथा ।।११

हे चञ्चल नेत्रवाली ! दीक्षा के सम्बन्ध में काल का नियम नहीं है। सद्-गुरु के दर्शन से ही, हे देवि ! अच्छा पर्व उपस्थित हो जाता है। गुरु यदि कृपा कर शिष्य को बुलाकर दीक्षा देते हैं, तो उस दशा में लग्नादि का कुछ भी विचार न करे। श्री गुरु के मुख से ब्रह्मादि द्वारा सेवित विद्या को ग्रहण कर, हे वरारोहे ! हे वरानने ! अभ्यास के लिये प्रति-दिन एक लाख जप करे ।।१०-११।।

गृहीत्वा श्रीगुरोर्वक्त्राद् विद्यां ब्रह्मादि-सेविताम् । लक्षं जपेद् वरारोहे ! अभ्यासार्थं वरानने ।।१२
ततस्तु चञ्चलापाङ्गि ! समनुष्ठानमाचरेत् । त्रि-लक्षं तत्र जप्त्वा वै गुरु-पूजा-पुरःसरम् ।।
तत्र समाहितो भूत्वा पुरश्चर्यां समाचरेत् ।।१३
न तत्र काल - नियमः शुद्धाशुद्धं वरानने ! न रिक्ता[1] न च भद्रा[2] च पुरश्चरण कर्मणि ।।१४
न तत्र चञ्चलापाङ्गि ! मल-मासं[3] विचारयेत् । जप-कालो महेशानि! कोटि-सूर्य-ग्रहैः समः ।।१५

हे चञ्चलापाङ्गि ! इसके बाद सविधि अनुष्ठान करे। श्रीगुरु की पूजा कर तीन लाख जप कर एकाग्र-चित्त होकर पुरश्चरण करे। हे वरानने ! उस समय काल का कोई नियम नहीं होता, शुद्धाशुद्ध का कोई विचार नहीं होता, पुरश्चरण में रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) और भद्रा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) आदि का कोई विचार नहीं होता। हे चञ्चलापाङ्गि ! उस क्षेत्र में मल-मासादि का भी विचार न करे। हे महेशानि ! जप-काल कोटि सूर्य-ग्रहण-काल के समान पावन होता है ।।१२-१५।।

दीक्षायां चञ्चलापाङ्गि! शुद्धाशुद्धं न चाचरेत् । अमावास्या भौम-वारे सोम-वारे चतुर्दशी ।।१६
यदि भाग्य-वशाद् देवि ! लभ्यते च नरोत्तमैः । दीक्षा-कालः स विज्ञेयः कोटि-सूर्य-ग्रहैः समः ।
तत्र दीक्षां प्रकुर्वीत तीर्थ-कोटि-फलं लभेत् ।।१७

हे देवि ! भाग्य-वश यदि मङ्गल के दिन अमावास्या या सोमवार की चतुर्दशी प्राप्त हो, तो दीक्षा में शुद्धाशुद्ध का विचार न करे। उस काल को दीक्षा हेतु कोटि-सूर्य-ग्रहण-काल के समान श्रेष्ठ समझे। उस दिन दीक्षा लेने से कोटि तीर्थों का फल मिलता है ।।१६-१७।।

यत्र विप्रे लक्षमुक्तं क्षत्रे तत्र चतुर्गुणम् । द्वादशं वैश्य-जातौ च शूद्रे षोडशधा स्मृतः ।।१८
अनेनैव तु मार्गेण पुरश्चर्या कलौ स्मृता ।।१९

भारते चञ्चलापाङ्गि ! प्रशस्तमिदमुत्तमम् । अन्य-द्वीपेषु वर्षेषु कल्पोक्तं द्विज ! आचरेत् ।।२०

जप-काल में ब्राह्मण के लिये जहाँ एक लाख संख्या बताई हो, वहाँ क्षत्रिय के लिये उसका चार गुना अर्थात् चार लाख, वैश्य के लिये बारह लाख और शूद्र के लिये सोलह लाख निर्दिष्ट है। हे लोलेक्षणे ! भारतवर्ष में यही प्रशस्त और उत्तम है, अन्य द्वीपों में वहाँ के विधान के अनुसार करे ।।१८-२०।।

क्षत्रे तु द्वि-गुणं देवि ! वैश्ये चतुर्गुणं भवेत् । शूद्रेषु चाष्टधा प्रोक्तं भारते च कृतादिषु ।।२१
एतद्-भिन्नं महेशानि ! न हि सिद्धिः जायते । पुरश्चर्या-समं देवि ! न हि किञ्चिद् वरानने !।।२२

हे देवि ! सत्यादि-युग में भारतवर्ष में क्षत्रिय दो गुना, वैश्य चार गुना, शूद्र आठ गुना अर्थात् ब्राह्मण एक लाख, क्षत्रिय दो लाख, वैश्य चार लाख और शूद्र आठ लाख जप करे। हे देवि ! ऐसा किये बिना सिद्धि नहीं मिलती। हे वरानने ! पुरश्चरण के समान कुछ भी नहीं है ।।२१-२२।।

प्रातः-स्नानं समासाद्य सन्ध्यां परम-दुर्लभाम् । उत्थाय चञ्चलापाङ्गि! गायत्रीं प्रजपेत् ततः ।।२३
ततश्च तान्त्रिकीं सन्ध्यां गायत्रीं तान्त्रिकीं तथा । सूर्यार्घ्यं च ततो दत्वा याग-मण्डपमाविशेत् ।।२४
मृद्वासने समासीन आचम्य शाक्त-मन्त्रकैः । कुसुम्भ-कुसुमाभं च वसनं परिधाय च ।।२५

हे चञ्चलापाङ्गि ! प्रातः स्नान और परम दुर्लभ (वैदिकी) सन्ध्या कर (वैदिकी) गायत्री का जप करे। तब तान्त्रिकी सन्ध्या और तान्त्रिकी गायत्री का जप कर सूर्य को अर्घ्य-दान दे। फिर पूजा-गृह में प्रवेश करे। कोमल आसन पर बैठकर शक्ति-मन्त्रों से आचमन करे। कुसुम फूल के समान लाल वस्त्र धारण करे ।।२३-२५।।

भोगार्थी श्वेत-स्वत्रं च मोक्षार्थी रक्त-वाससी । वैश्यो पीतं महेशानि ! परिधाय शिवं व्रजेत् ।।२६
मानसैः पूजनं कृत्वा बहिः-पूजां समाचरेत् । आरम्भ - दिवसे चैव उपचारैश्च षोडशैः ।।२७
सम्पूज्य विधि-वद् भक्त्या यतात्मा जपमाचरेत् । प्रातः-कालं समासाद्य मध्य-दिने विरामयेत् ।।२८

हे महेशानि ! भोगार्थी श्वेत वस्त्र, मोक्षार्थी लाल वस्त्र और वश्य-कामी पीला वस्त्र पहन कर शिव के पास जाए। मानसोपचारों से पूजा कर बाह्य पूजा करे। पहले

दिन सोलह उपचारों से यथा-विधि भक्ति-पूर्वक पूजा कर एकाग्र हो जप करे। प्रातःकाल से प्रारम्भ कर दोपहर में मध्याह्न-सन्ध्या कर विश्राम करे ।।२६-२८।।

उप-सन्ध्यां ततः कृत्वा दशांशमाचरेत् सुधीः । होमश्च तर्पणं चैव अभिषेकस्ततः परम् ।।२६

भोजनं कुल-विप्राणां दक्षिणां गुरवे ततः । पुरश्चारस्य चार्वङ्गि ! पञ्चाङ्गः परिकीर्तितः ।।३०

(कलौ होमो महेशानि ! कदाचिन्नास्ति योगिनि !)

तब सायं-सन्ध्या कर बुद्धिमान् दशांश कर्म करे । १-होम, २-तर्पण, ३-अभिषेक, ४-कुल-विप्र-भोजन के बाद गुरु को ५-दक्षिणा दे । चार्वङ्गि ! पुरश्चरण के ये पाँच अङ्ग कहे हैं ।।२६-३०।।

(हे महेशानि ! किसी-किसी के मत से कलि-युग में होम आवश्यक नहीं है।)

पञ्चाङ्गं हि विना देवि ! पुरश्चारो न सिद्धचति । तस्मात् तु यत्नतो देवि ! पञ्चाङ्ग-संयुतं चरेत् ।।३१

कलौ तु अङ्ग-हीनत्वाद् होमस्य वर-वर्णिनि ! ब्राह्मणस्य तदा देवि ! विना होमं न सिद्धचति ।।३२

हे देवि ! पञ्चाङ्ग के बिना पुरश्चरण सिद्ध नहीं होता । अतः यत्न करके पाँचों अङ्गों सहित पुरश्चरण करे । हे देवि ! कलि-युग में होम की विधि न रहने पर भी ब्राह्मण को होम के बिना सिद्धि नहीं मिलती ।।३१-३२।।

तस्मात् तु यत्नतो देवि ! पञ्चाङ्ग-संयुतं चरेत् । क्रमात् क्रमान्महा-देवि ! द्वि-गुणं जपमाचरेत् ।।३३

दिवा लक्षं महेशानि ! नियतात्मा जपं चरेत् । दिव्य-वीर-मतेनैव रात्रौ लक्षं जपेत् सुधीः ।।३४

युग-भेदेन चार्वङ्गि ! जाति-भेदे तथैव च । तथैव वर्ष - भेदे तु सर्वं कुर्यादतन्द्रितः ।।३५

हे देवि ! क्रम-क्रम से दुगुना जप करे। एकाग्र होकर नियम-पूर्वक दिन में एक लाख जप करे । रात्रि में दिव्य या वीर-भाव से साधक एक लाख जप करे । युग-भेद, जाति-भेद, देश-भेद—कुछ भी हो, सभी कर्म आलस्य छोड़कर करे ।।३३-३५।।

अनेन क्रम-मार्गेण पुरश्चर्यां समापयेत् । ततः सिद्धो भवेद् देवि ! नान्यथा मम भाषितम् ।।३६

अनेन विधिना देवि ! यदि सिद्धिर्न जायते । पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ।।३७

दुरदृष्ट-वशाद् देवि ! संसर्ग-जाति - दोषतः । यदि सिद्धिर्न जायते तदा द्वादशधा भवेत् ।।३८

उक्त क्रम से पुरश्चर्या पूर्ण करे। तभी सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं, यह मेरा कथन है । हे देवि ! इस प्रकार करने पर यदि सिद्धि न मिले, तो पुनः उसी विधि से करे, तो निश्चय ही सिद्ध होगा । दुर्भाग्य, कुसङ्ग या जाति-दोष से यदि सिद्धि न हो, तो इसी प्रकार बारह बार पुरश्चरण करे। हे परमेशानि ! बारहवीं बार समापन करे ।।३६-३८।।

द्वादशे परमेशानि ! पुरश्चर्यां समापयेत् । चन्द्र-सूर्योपरागे च प्रजपेत् साधकः सुधीः ।।३६

अमावास्या भौम-वारे सोम-वारे चतुर्दशी । यदा भवति चार्वङ्गि ! चन्द्र-सूर्य-ग्रहेण किम् ।। ४०

ग्रासाद् विमुक्ति-पर्यन्तं प्रजपेत् साधकाग्रणीः । अणिमादि - गुणाधारस्तदा भवति साधकः ।।४१

बुद्धिमान् साधक चन्द्र-सूर्य के ग्रहण-काल में जप करे। मङ्गल के दिन अमावास्या हो या सोम-वार को चतुर्दशी हो, तो ग्रहण-जैसा ही पर्व होता है। ग्रहण-काल में 'ग्रास' होने के समय से 'मोक्ष' होने तक जप करे। इससे साधक अणिमादि-गुणों का आधार बन जाता है ।।३९-४१।।

१ रिक्ता—चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी-तिथयः ।

२ भद्रा—द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी-तिथयः ।

३ मल-मास—अमावस्या-द्वय-संयुक्तः रवि-संक्रान्ति-वर्जितः मासः ।

।। पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-संवादे प्रथमः पटलः ।।

द्वितीयः पटलः

बाह्ये अन्तरे च ग्रहणम्

(बाहर और भीतर का ग्रहण)

।। श्रीदेव्युवाच ।।

देव-देव ! महा - देव ! कथयस्वानुकम्पया । यदि न कथ्यते देव ! विमुञ्चामि तदा तनुम् ।।१

सर्व-तत्त्व-मयस्त्वं हि सर्व-योग - मयः सदा । सुषुम्नान्तर्गतं देव ! यत् कूटं परमेश्वर !

एतद् रहस्यं परमं सर्व-योगोत्तमोत्तमम् ।।२

श्री देवी ने कहा—हे देव - देव महा-देव ! आप सब तत्त्वों से युक्त हैं और सभी योगों के स्वरूप हैं। सुषुम्ना के अन्दर जो कूट है, यदि उसे नहीं बताएँगे, तो मैं शरीर त्याग दूँगी ।।१-२।।

।। श्रीमहादेव उवाच ।।

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि सुषुम्ना-मध्य-संस्थितम् । सूर्य-पर्व [1] महेशानि ! चन्द्र-पर्व [2] तथैव च ।।३

सुषुम्ना - वर्त्म - मध्यस्थं सूर्य - पर्व परात्परम् । यत्र ब्रह्मादयो देवो जप-यज्ञेषु तत्पराः ।।४

श्री महादेव बोले—हे महेशानि ! अब मैं सुषुम्ना के मध्य में होनेवाले सूर्य-पर्व और चन्द्र-पर्व को बताऊँगा। सुषुम्ना के मार्ग के बीच में स्थित सूर्य-पर्व बहुत श्रेष्ठ होता है, जिसमें ब्रह्मादि देवता सदा जप और यज्ञ में तत्पर रहते हैं ।।३-४।।

किं पुनर्मानवा एव वराकाः क्षुद्र - बुद्धयः । पुष्कर - द्वीप-वासिनो ये चान्ये मानवाः प्रिये ।।

तेषां च परमेशानि ! किञ्चित् सिद्धिः प्रजायते ।।५।।

सूर्य-पर्व वरारोहे ! बहु - भाग्येन लभ्यते । तथैव चन्द्र - पर्वोऽपि जप-यज्ञं सु - दुर्लभम् ।।६

नातः पर-तरः कालः कश्चिदस्ति वरानने ! सहस्रारे महा - पद्मे चन्द्रस्तिष्ठति सर्वदा ।।७

मूलाधारे महेशानि ! सूर्यस्तिष्ठति योगिनि ! स्वाधिष्ठाने महेशानि ! अग्निस्तिष्ठति सुन्दरि ।।८

हे प्रिये ! सामान्य अल्प-बुद्धि वाले मनुष्यों की क्या बात, पुष्कर द्वीप-वासी अन्य जो मानव हैं, उन्हें भी कुछ ही सिद्धि वहाँ मिलती है। हे वरारोहे ! बड़े भाग्य से सूर्य-पर्व मिलता है, उसी प्रकार चन्द्र-पर्व भी। इस काल में जप-यज्ञ करना बड़ा दुर्लभ है। ऐसा श्रेष्ठ काल दूसरा नहीं है। हे महेशानि ! सहस्रार के महा पद्म में चन्द्र और मूलाधार में सूर्य सदा विराजमान रहते हैं। हे सुन्दरि ! स्वाधिष्ठान में अग्नि-देव रहते हैं ।।५-८।।

चन्द्र - सूर्य-ग्रहो देवि ! यदा भवति बाह्यतः। तदैव सहसा देवि ! सहस्रारे मनो दधे ।।९
सूर्य-पर्वं वरारोहे ! मूलाधारे मनो दधे। बाह्य - पर्वं महेशानि ! दृष्ट्वा तूर्णं मनो दधे ।।१०

हे देवि ! बाहर जब चन्द्र और सूर्य-ग्रहण होते हैं, तभी सहसा सहस्रार में मन को एकाग्र करे। हे महेशानि ! बाहर सूर्य-ग्रहण पर्व का दर्शन होते ही तुरन्त मन को मूलाधार में एकाग्र करना चाहिये ।।९-१०।।

मनो विवेच्य चार्वङ्गि ! चन्द्रे च ब्रह्म-पङ्कजे। अन्तः-पर्वणि चार्वङ्गि ! निवेश्य मन-सारथिः।
जपेत् परम-यत्नेन न तु बाह्य - निरीक्षणम् ।।११।।
यः पश्येत् सूर्य-पर्वं च पुनः पुनः शुचि-स्मिते ! तज्जपं चञ्चलापाङ्गि ! सर्वं च निष्फलं व्रजेत् ।।१२

हे चार्वङ्गि ! ब्रह्म-पङ्कज (सहस्रार) में स्थित चन्द्र में मन को दृढ़ता से स्थिर कर अन्तःपर्व-रूपी रथ पर मन को सारथी-रूप में बैठाकर यत्न-पूर्वक जप करे। बाह्य पर्व का सीधे दर्शन न करे। हे शुचि-स्मिते ! जो बार-बार बाह्य पर्व को देखता है, उसका सारा जप निष्फल होता है अर्थात् जो मन को एकाग्र कर जप न कर यह सोचता रहता है कि कब ग्रहण समाप्त होगा और ग्रहण-मोक्ष-काल को ध्यान में रखता हुआ जप करता है, उसका जप व्यर्थ परिश्रम मात्र होता है ।।११-१२।।

सुषुम्नायाश्च विमले पुष्करे हृदयान्विते। विन्दु-तीर्थे च वा स्नायात् पुनर्जन्म न विद्यते ।।१३
सुषुम्नादि-नदी यत्र साक्षाद् ब्रह्म-स्वरूपिणी। गङ्गादि-सर्व-तीर्थाणि तत्र तिष्ठन्ति सन्ततम् ।।१४

सुषुम्ना के निर्मल पद्म में या हृदय में स्थित विन्दु-तीर्थ में जो स्नान करता है, अर्थात् अन्तर्मल को धोकर मन को स्वच्छ रखता है, उसका फिर जन्म नहीं होता। साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपिणी सुषुम्ना आदि नदियाँ जहाँ विद्यमान हैं, वहाँ गङ्गादि सभी तीर्थ सदा रहते हैं ।।१३-१४।।

चन्द्र-सूर्य-ग्रहे देवि ! अन्तरात्मनि चानघे ! यः पश्येत् चञ्चलापाङ्गि ! सहस्रारे निशा-पतिम् ।।१५
मूलाधारे तु यः पश्येत् साधकः सूर्य-मण्डलम्। राहु-ग्रह-समायुक्तमन्तरात्मनि पश्यति ।।१६
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यमिदं भद्रे ! स्नापयेद् ह्रद-मध्यतः। यत्र नित्या महा-माया सुषुम्ना ह्रद-रूपिणी ।।१७

हे अनघे देवि ! चन्द्र-सूर्य के ग्रहण-काल में जो साधक अन्तरात्मा से मन को जोड़कर सहस्रार में चन्द्र और मूलाधार में सूर्य-मण्डल को राहु-ग्रस्त-रूप में भावना से देखते हैं, वह वैसा ही अन्तरात्मा में भी देख पाते हैं। हे भद्रे ! इस प्रकार के आश्चर्य को देखकर उस ह्रद (जलाशय) में स्नान करे, जहाँ ह्रद-रूपिणी नित्या महा-माया सुषुम्ना स्थित है ।।१५-१७।।

यस्या वामे इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिङ्गला परा । स्नात्वा तत्र ह्रदे देवि ! शिव-शक्ति-मयो भवेत् ।।१८
शिव-शक्ति-मयी या तु सा सन्ध्या वर-वर्णिनि ! सन्ध्या-स्थाने मयैतत् ते कथितं योग-दुर्लभम् ।
सुषुम्ना-वर्त्म-मध्यस्थं यद् दृष्टं वर-वर्णिनि ।।१९।।
दृष्ट्वा चन्द्र-ग्रहं भद्रे ! सूर्यं वा जपमाचरेत् । तावत् कालं जपेन्मन्त्रं यावन्मोक्षं वरानने ।।२०

जिसके बाईं ओर इड़ा और दाईं ओर परा पिङ्गला विद्यमान है, वहाँ उस ह्रद में स्नान करने से साधक शिव-शक्ति-मय हो जाता है। हे वर-वर्णिनि ! जो शिव-शक्ति-मयी है, वही सन्ध्या है। सुषुम्ना-मार्ग के मध्य में स्थित जिसे मैंने देखा है, उसी योग-दुर्लभ सन्ध्या-स्थान का वर्णन मैंने किया है। हे भद्रे ! चन्द्र - ग्रहण या सूर्य - ग्रहण को देखकर जप आरम्भ करे और जब तक मोक्ष न हो, तब तक मन्त्र का जप करता रहे ।।१८-२०।।

एतत् तन्त्रं महेशानि ! ब्रह्मा जानाति साधकः । इन्द्राद्यैस्त्रिदशैः सर्वैर्बहु-भाग्येन लभ्यते ।।२१
ज्ञात्वा तन्त्रमिदं भद्रे ! दिव्या नागादयोऽपरे । प्रजप्य इष्ट-विद्यां च शीघ्रं सिद्धिमवाप्नुयुः ।।२२

हे महेशानि ! ब्रह्मा इस तन्त्र को जानते हैं और इन्द्रादि देवता बड़े भाग्य से इसे प्राप्त करते हैं। इस तन्त्र को जानकर दिव्य नागादि सभी तथा अन्य (गन्धर्व, सिद्ध आदि) ने इष्ट-मन्त्र को जप कर शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर ली ।।२१-२२।।

पुष्कर-द्वीप-वासाश्च ये लोकाः सुर-वन्दिते ! ते ते सर्वे महेशानि ! किञ्चित् फलमवाप्नुयुः ।।२३
भारते बहु-कालेन सिध्यन्ति नग-नन्दिनि ! नाना-दोष-युता देवि ! भारते मूर्तिमान् कलिः ।।२४
ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य देवा नागादयोऽपरे । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये चान्ये पुरुषोत्तमाः ।।२५
गङ्गादि-सर्व-तीर्थानि प्रयागो वदरी तथा । हरिद्वारश्च चार्वङ्गि ! गङ्गा काशी च सुन्दरी ।।२६
सर्वे तेऽपि महा-भागे ! आविर्भवन्ति तत्र वै । तस्मादुपरागे देवि ! प्रजपेदिष्ट-देवताम् ।।२७

हे देव-वन्दिते ! पुष्कर द्वीप के निवासी जो लोग हैं, उन सबने भी कुछ फल प्राप्त किया। हे गिरिजे ! भारत में लोग बहुत समय में सिद्ध होते हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष कलि के होने से विविध दोषों से युक्त हैं। देव-गण, नागादि और अन्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र-गण, अन्य पुरुष-श्रेष्ठ-गण, गङ्गादि सभी तीर्थ, प्रयाग, बदरी, हरिद्वार और सुन्दरी काशी—ये सभी चन्द्र व सूर्य के ग्रहण-काल में प्रकट होते हैं, अतः देवि ! उस समय इष्ट-देवता का मन्त्र जपना चाहिये ।।२३-२७।।

चन्द्र-सूर्य-ग्रहे देवि ! मत्तेज उप - पद्यते । तत्-सर्वं चञ्चलापाङ्गि ! मानुषा अधमाः कुतः ।।२८
कलि-कालस्य लोकेषु भारते वर-वर्णिनि ! नाना - दोषाः प्रजायन्ते अत एव न सिध्यति ।।२९
चन्द्र-सूर्य-ग्रहे देवि ! लोका भारत-वासिनः । तत्-काले प्रजपेद् भक्त्या नान्यथा तु कदाचन ।।३०

चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में मेरा तेज उप-पद्य (प्रत्यक्ष) हो उठता है, जिसे देखने को सभी देवादि उत्सुक होते हैं, फिर अधम मनुष्यों की क्या बात ? हे सुन्दर वर्णवाली ! भारत में कलियुग के लोगों में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, अतः वे सिद्धि नहीं पाते । हे देवि ! चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में भारत-वासी लोग भक्ति- पूर्वक जप करें, इसकी कभी उपेक्षा न करें ।।२८-३०।।

स्नानं दानं तथा श्राद्धमिन्दोः कोटि - गुणं भवेत् । रवेर्दश - गुणं भद्रे ! ग्रहणे तु भविष्यति ।।३१
एकधा प्रजपेन्मन्त्रमिन्दोः कोटि-गुणं भवेत् । सूर्ये दश-गुणं देवि ! नान्यथा मम भाषितम् ।।३२
एतत् ते कथितं तत्त्वं सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितम् । अति-गुह्यं महत् पुण्यं सारात्सारं परात्परम् ।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदि कल्याणमिच्छसि ।।३३।।

स्नान, दान व श्राद्धादि चन्द्र-ग्रहण में कोटि-गुणा और सूर्य-ग्रहण में दश-गुणा फल-दायक होते हैं । हे देवि ! चन्द्र-ग्रहण में एक बार मन्त्र जपने का फल कोटि-गुणा और सूर्य-ग्रहण में दश-गुणा होता है, यह मेरा कथन कभी मिथ्या नहीं होता । सुषुम्ना-मार्ग में स्थित यह तत्त्व तुमसे कहा गया, जो अति गोप्य, परम पवित्र, सार का भी सार और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है । यदि कल्याण चाहो, तो किसी को न बताये ।।३१-३३।।

१ सूर्य-पर्व—सूर्य-ग्रहण, सूर्य-संक्रमणादि ।
२ चन्द्र-पर्व—चन्द्र-ग्रहण ।

।। पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-संवादे ग्रहण-पुरश्चरणं नाम द्वितीयः पटलः ।।

तृतीयः पटलः

पुरश्चरण-कालीन-विविध-मन्त्राः

(पुरश्चरण-काल के विविध मन्त्र)

।। श्रीमहादेव उवाच ।।

अति-गुह्यं प्रवक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् । सुषुम्ना-वर्त्म-मध्यस्थं यन्मन्त्रं शृणु तत् प्रिये ।।१
एतन्मन्त्रमविज्ञाय यो जपेत् सूर्य-पर्वणि । तस्य सर्वार्थ-हानिः स्यादन्ते नरकमाप्नुयात् ।।२
मन्त्रं शृणु वरारोहे ! प्रशस्तं पर्व - दर्शने । मोक्ष-काले च चार्वङ्गि ! प्रशस्तं यच्च तच्छृणु ।।३

श्री महादेव ने कहा—हे प्रिये, अति गोप्य, सार का सार, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, सुषुम्ना-मार्ग के मध्य में स्थित जो मन्त्र है, उसे सुनो । इस मन्त्र को न जानकर

जो सूर्य-ग्रहण में जप करता है, उसके सभी उद्देश्य नष्ट होते हैं और अन्त में नरक मिलता है। हे वरारोहे ! ग्रहण-दर्शन के समय प्रशस्त मन्त्र को सुनो, हे चार्वङ्गि ! मोक्ष-काल में जो प्रशस्त है, उसे सुनो ॥१-३

प्रणव - त्रयमुद्धृत्य माया-वीजं समुद्धरेत् । ततः प्रणवमुद्धृत्य एवमेतत् सु-दुर्लभम् ॥४
एतां सप्ताक्षरीं विद्यां प्रजप्य दशधा प्रिये ! यः पश्येद् ग्रहणं देवि ! प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥५

तीन प्रणव का उद्धार कर माया-वीज का उद्धार करे, फिर प्रणव उद्धृत करे—यह बड़ा दुर्लभ मन्त्र है—ॐ ॐ ॐ ह्रीं ॐ ॐ ॐ । हे प्रिये ! इस सप्ताक्षरी विद्या का दश बार जप कर जो ग्रहण को देखता है, उसे प्रायश्चित्त नहीं होता ॥४-५॥

मोक्ष-कालस्य चार्वङ्गि ! प्रशस्तं यच्च तच्छृणु । माया-वीज-त्रयं लिख्य प्रणवं तदनन्तरम् ॥६
पुनर्माया - त्रयं लिख्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये ! एतन्मन्त्र-द्वयं देवि ! सर्वत्रैव प्रशस्यति ॥७

हे चार्वङ्गि ! मोक्ष-काल में जो प्रशस्त है, उसे सुनो । तीन माया-वीज लिख कर उसके बाद प्रणव, फिर तीन माया लिखे, यह मन्त्रोद्धार है—ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं । ये दोनों मन्त्र सर्वत्र प्रशस्त हैं ॥६-७॥

वैष्णवेषु च शैवेषु शाक्ते सौरे वरानने ! प्रशस्तं चञ्चलापाङ्गि ! नान्यथा तु कदाचन ॥८
एतन्मन्त्रमविज्ञाय यः पश्येद् ग्रहणं शुभे ! सर्वं तस्य वृथा देवि ! अन्ते शूकरतां व्रजेत् ॥९
दर्शने मुक्ति-काले च मन्त्रमेतत् प्रकीर्त्तितम् । यन्नोक्तं सर्व-तन्त्रेषु इदानीं प्रकटीकृतम् ॥१०

हे वरानने ! वैष्णव, शैव, शाक्त और सौर—सभी के लिए ये मन्त्र प्रशस्त हैं, इसमें कभी अन्यथा नहीं है । हे शुभे ! इन मन्त्रों को न जानकर जो ग्रहण को देखता है, उसका सब कुछ व्यर्थ होता है और अन्त में वह शूकरता प्राप्त करता है । दर्शन और मोक्ष-काल के ये मन्त्र हैं, जो किसी तन्त्र में नहीं कहे हैं, अभी प्रकट किए गए हैं ॥८-१०॥

न तिथिर्न व्रतं होमो ग्रहणे चन्द्र - सूर्ययोः । ग्रासाद् विमुक्ति-पर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्य-धीः ॥११
यथा बाह्ये महेशानि ! अन्तरात्मनि तथैव च । उभयोरेकतां कृत्वा प्रजपेदन्तरात्मनि ॥१२
राहुर्यदा महेशानि ! चन्द्रं सूर्यं च धावति । वैर - भावमनुस्मृत्य तदा जपेच्च पार्वति ॥१३

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण-काल में ग्रास से मोक्ष तक एकाग्र मन से मन्त्र-जप करे, न तिथि, न व्रत, न होम की आवश्यकता है । हे महेशानि ! जैसे बाहर, वैसे ही भीतर आत्मा में—दोनों में ऐक्य कर जप करे अर्थात् चन्द्र और सूर्य के बाहरी ग्रहण के समान शरीरस्थ सहस्रार में चन्द्रमा और मूलाधार में सूर्य को संयोजित कर बाह्य ग्रहण एवं अन्तः ग्रहण दोनों की एकता अनुभव करते हुए जप करना चाहिए । हे पार्वति ! जब राहु शत्रु-भाव से चन्द्र और सूर्य की ओर दौड़े, तभी जप करना चाहिए ॥११-१३॥

महोपकारकं ह्येतत् सर्वं-योग-मयं प्रिये ।।१४।।
ब्रह्मादि-देवताः सर्वे गङ्गाद्यास्तीर्थ-कोटयः । सूर्य - मण्डलमासाद्य जपन्ति जगदम्बिकाम् ।।१५
तां दृष्ट्वा सहसा देवि ! पलायन्ते महापदः । अन्यथा तत्क्षणात् सर्वं ब्रह्माण्डं नाशमाप्नुयात् ।।१६
अतएव महेशानि ! ब्रह्माद्यास्त्रि - दिवौकसः । हरन्ति सर्वं-तेजांसि भारते मानुषाः कुतः ।।१७

हे प्रिये ! यह जप बड़ा लाभ-प्रद और सर्वं-योग-मय है । उस समय ब्रह्मादि देवता और गङ्गादि कोटि तीर्थ सूर्य-मण्डल में पहुँचकर जगदम्बा के मन्त्र को जपते हैं । हे देवि ! उन देवी को देखकर सारी आपदाएँ तुरन्त दूर हो जाती हैं, अन्यथा सारा ब्रह्माण्ड तत्क्षण नष्ट हो जाता । अतएव हे महेशानि ! ब्रह्मादि देवता सारे तेज को हरने में समर्थ होते हैं, भारत के मनुष्यों की क्या बात ।।१४-१७।।

ग्रहणं चन्द्र-सूर्यस्य यदा भवति सुन्दरि ! स्थानं त्यक्त्वा जलं त्यक्त्वा ते देवाः सूर्य-मण्डलम् ।
गत्वा शीघ्रं जपेद् विद्यां कालिकां जगदम्बिकाम् ।।१८।।
अतएव महेशानि ! सामान्य जलमेव च । तीर्थोदकं वरारोहे ! सामान्यमुदकं यथा ।
सामान्यमुदकं यत्तु गङ्गा-तोय-समं भवेत् ।।१९।।
कालिकायाः प्रसादेन मोक्षं ब्रह्म-पुरं व्रजेत् ।।२०।।

हे सुन्दरि ! चन्द्र-सूर्य का ग्रहण जब होता है, तब स्थान और जल को छोड़कर वे देवता सूर्य-मण्डल में जाकर जगदम्बा काली की विद्या जपने लगते हैं । इसी से हे महेशानि ! उस समय सामान्य जल भी तीर्थ-जल हो जाता है अर्थात् ग्रहण-काल में सामान्य जल में स्नान करने से भी गङ्गा-स्नान का फल मिलता है । काली की कृपा से मोक्ष मिलता है और ब्रह्म-पुरी में वास होता है ।।१८-२०।।

भारते विविधा पूजा भारते विविधो जपः । तथापि बहु-कालेन सिध्यते सङ्ग-दोषतः ।।२१
मान्धातृ-प्रमुखाः सर्वे रामो दाशरथिस्तथा । प्रजप्य कालिकां देवि ! शीघ्रं सिद्धिमवाप्नुयुः ।।२२

भारत में अनेक प्रकार की पूजा और अनेक प्रकार के जप हैं किन्तु सङ्ग-दोष से सिद्धि विलम्ब से मिलती है । हे देवि ! मान्धाता आदि सभी ने और दशरथ-पुत्र राम ने काली का मन्त्र जप कर शीघ्र सिद्धि पाई थी ।।२१-२२।।

जम्बू-द्वीपेषु तीर्थेषु नाना-तीर्था सन्ति वै । अन्य-द्वीपस्य वर्षस्य सर्वे लोका बरानने !
नाना-भोग-युताः सर्वे देव-वत् सर्वदा प्रिये ।।२३
ते सर्वे देवता-प्राया नाना-भोग-विलासिनः । नाना-सुख-मयाः सर्वे दिव्य-स्त्री-शत-सेविताः ।।२४
तेषां गेहे महेशानि ! नाना-तीर्थानि सन्ति वै ।।२५

जम्बू-द्वीप के तीर्थों में अनेक पुण्य स्थान हैं। अन्य द्वीप के भाग के सभी लोक विविध भोगों से युक्त हैं और हे प्रिये ! सभी सदा देवों के समान रहते हैं। वे सभी देवों की तरह विविध भोगों का आनन्द लेनेवाले, विविध सुखों से युक्त और सैकड़ों दिव्य स्त्रियों द्वारा सेवित रहते हैं। हे महेशानि ! उनके घर में विविध तीर्थ विद्यमान हैं ॥२३-२५॥

ग्रहणं चन्द्र-देवस्य सूर्य - देवस्य सुन्दरि ! बहु-भाग्येन चार्वङ्गि ! लोकैर्भारत-वासिभिः ॥
प्राप्ति-मात्रेण जप्तव्यं तत्-सर्वमक्षयं भवेत् ॥२६

हे सुन्दरि ! चन्द्र-देव और सूर्य-देव का ग्रहण बड़े भाग्य से होता है। हे सुन्दर अङ्गोंवाली ! भारत-वासी लोगों को उन्हें प्राप्त करते ही जप करना चाहिए। वह सारा जप अक्षय पुण्य-दाता होता है ॥२६॥

चतुर्दशी पौर्णमासी सोम-मङ्गल-संयुता। यदा भवति चार्वङ्गि ! तदा सूर्य-ग्रहेण किम् ॥२७
एषा तु चञ्चलापाङ्गि ! कोटि-सूर्य-समा तिथिः ॥२८
शुक्लाष्टम्यां नवम्यां वै चतुर्दश्यां तथैव च। संक्रान्त्यां चञ्चलापाङ्गि ! पूजा-लोपं न कारयेत् ॥२९
अवश्यं पूजयेद् देवीं * विष्णुं वा शिवमेव वा ॥३०

चतुर्दशी और पूर्णमासी जब सोम और मङ्गल से युक्त होती हैं, तब हे सुन्दर अङ्गोंवाली ! सूर्य-ग्रहण की क्या आवश्यकता ? हे चञ्चल-नेत्रे ! ये तिथियाँ करोड़ों सूर्य के समान हैं। शुक्ल पक्ष की अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी में, हे चञ्चल-नेत्रे ! पूजा का अभाव कभी न करे। देवी, विष्णु या शिव की पूजा अवश्य करनी चाहिये ॥२७-३०॥

पाठान्तर—* 'देवीं' के स्थान पर सम्बोधन 'देवि' माना जाय, तो अर्थ होगा, 'हे देवि ! विष्णु या शिव की पूजा करनी चाहिए।'

यदि नो पूजयेद् देवीं तनु-हीनं भवेत् सदा ॥ ३१
तनु-हीनं कृतं कर्म जप-कर्म निष्फलम्। शाम्भवी कुप्यते तेभ्यो ब्रह्म-हत्या पदे पदे ॥३२
यत् यत् कर्म कृतं देवि ! पुरश्चरणमुत्तमम्। तत्-सर्वं नाशमायाति मम तुल्यो भवेत् यदि ॥३३

यदि देवी की पूजा नहीं की जाती, तो व्यक्ति 'तनु'-हीन हो जाता है। 'तनु'-हीन का किया हुआ कर्म और जप निष्फल होता है। ऐसे लोगों से शाम्भवी रुष्ट हो जाती हैं और उन्हें पग-पग पर ब्रह्म-हत्या जैसा पाप लगता है। हे देवि ! जो-जो कर्म और उत्तम पुरश्चरण वह करता है, भले ही मेरे समान तेजस्वी ही क्यों न हो, उसका वह सब कर्म नष्ट हो जाता है ॥३१-३३॥

* यहाँ 'देवी' से सभी देवों का आशय है।

चन्द्र-सूर्य-ग्रहे देवि ! न राशिं गणयेत् क्वचित् । ब्राह्मण-क्षत्र-वैश्याश्च तथा शूद्राश्च पार्वति !
न राशिं गणयेद् भद्रे ! गणयेद् यवनः सदा ।। ३४
चन्द्र-ग्रहण-कालाद्धि नान्यः कालः प्रशस्यते । स कालः परमेशानि ! परं ब्रह्म स्व-मूर्ति-मान् ।।३५

हे देवि ! चन्द्र और सूर्य के ग्रहण-काल में कभी राशि की गणना न करे । हे पार्वति ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र राशि की गणना न करें । हे भद्रे ! यवन को सदा गणना करनी चाहिये । चन्द्र-ग्रहण के काल से अधिक उत्तम अन्य कोई काल नहीं है । हे परमेशानि ! वह काल स्वयं परब्रह्म-स्वरूप है ।।३४-३५।।

प्रजपेद् यदि वै विद्यां यवनो यवनोद्भवः । विचार्य यदि देवेशि ! यवनः प्रजपेद् यदि ।।
तत्-काले चञ्चलापाङ्गि ! सिध्यते नान्यथा क्वचित् ।।३६
ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य न जपेद् यदि पामरः । पूर्व-पुण्यं परित्यज्य विष्ठायां जायते कृमिः ।।३७
तस्माद् यत्नेन देवेशि ! कर्तव्यो ग्रहणे जपः । न तिथिर्नाम गोत्रं च न च सङ्कल्पमाचरेत् ।।३८

यवन से उत्पन्न यवन यदि विचार कर विद्या का जप करता है, तो हे चञ्चल-नेत्रे, देवेशि ! उस काल में वह सिद्धि प्राप्त करता है, अन्यथा कदापि नहीं । चन्द्र-सूर्य के ग्रहण-काल में यदि कोई पापी जप नहीं करता, तो अपने पूर्व-पुण्य से रहित होकर विष्ठा में कीड़े का जन्म पाता है । अतएव हे देवेशि ! यत्न-पूर्वक ग्रहण-काल में जप करना चाहिये । उसके लिये तिथि, नाम, गोत्र आदि सङ्कल्प का प्रयोग न करे ।।३६-३८।।

कलि-काले महेशानि ! यवनो बलवांस्तदा । मत्स्य-मांस-रताः सर्वे यवना मद्य - सेविनः ।
तथापि परमेशानि ! यवनः सिध्यते कलौ ।।३९
न जपेद् देव-देवेशि ! पूर्व-पुण्यं प्रणश्यति ।।४०
तस्मात् प्रयत्नतो देवि ! प्रजपेत् सूर्य-पर्वणि । अन्यथा सर्व-हानिः स्याद् रोगी स्यादुत्तरोत्तरम् ।।४१

हे महेश्वरि ! कलि-काल में सभी बलवान् यवन लोग मत्स्य-मांस और मद्य का सेवन करनेवाले होते हैं, तथापि हे परमेशानि ! यवन कलि-युग में सिद्धि पा लेता है । देव-देवेशि ! जप न करने से पूर्व - पुण्य नष्ट हो जाता है । अतः हे देवि ! सूर्य-पर्व में प्रयत्न करके जप करना चाहिए, अन्यथा सभी प्रकार की हानि होती है और व्यक्ति उत्तरोत्तर रोगी होता है ।।३९-४१।।

ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य गङ्गा मूर्ति-मती भवेत् । तत्र वक्ष्यामि चार्वङ्गि ! यत्कर्म शृणु साम्प्रतम् ।
सामान्य-पटलं देवि ! प्रसङ्गात् कथयामि ते ।।४२

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण-काल में गङ्गा जी प्रत्यक्ष होती हैं । उस समय हे चञ्चल-नेत्रे ! जो कर्म करना चाहिए, अब उसे सुनो । हे देवि ! प्रसङ्ग-वश मैं तुमसे सामान्य 'पटल' कहता हूँ ।।४२।।

तन्त्रोक्तं ध्यान-मन्त्रं च प्रशस्तं भारते कलौ ॥४३
वेदोक्तं चैव स्मृत्युक्तं पुराणोक्तं वरानने । न शस्तं चञ्चलापाङ्गि ! न शस्तं भारते कलौ ॥४४

कलि-युग में भारत में तन्त्रोक्त ध्यान-मन्त्र ही प्रशस्त है। हे चञ्चल-नेत्रे, वरानने ! वेद-स्मृति और पुराण में कथित ध्यान कलियुग में भारत में प्रशस्त नहीं है ॥४३-४४॥

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां शुक्लाम्बर-विभूषिताम् । शुभ्र-मुक्ता-मयीं मालां हृदयोपरि-संस्थिताम् ।
श्वेत-पद्म-समासीनां श्वेताभरण-भूषिताम् । सदा षोडश-वर्षीयां ब्रह्मादि-परिसेविताम् ॥४५

शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल-वर्णा, श्वेत-वस्त्रों से विभूषिता, उज्ज्वल मोतियों से बनी माला हृदय पर धारण करनेवाली, श्वेत कमल पर विराजमाना, उज्ज्वल अलंकारों से सुशोभिता, सदा षोडश-वर्षीया, ब्रह्मा आदि देवों द्वारा आराधिता देवी को ध्यान करे ॥४५॥

एवं ध्यात्वा जपेद् विद्यां गङ्गायाः शृणु पार्वति ॥४६
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य माया - वीजं समुद्धरेत् । गङ्गायै परमेशानि ! ततः परमुदीरयेत् ॥४७
पुनर्वीज-द्वयं प्रोक्त्वा वह्नि-जायां समुद्धरेत् । एषा नवाक्षरी विद्या सुषुम्ना-मार्ग-संस्थिता ॥४८

इस प्रकार ध्यान कर जप करे। हे पार्वति ! गङ्गा की 'विद्या' (मन्त्र) सुनो— पहले 'प्रणव' (ॐ) का उच्चारण कर 'माया-वीज' (ह्रीं) का उद्धार करे। हे परमेशानि ! तब 'गङ्गायै' कहे। पुनः दोनों वीज (ॐ ह्रीं) कहकर 'वह्नि-जाया' (स्वाहा) का उद्धार करे। यह नौ अक्षर की 'विद्या' (ॐ ह्रीं गङ्गायै ॐ ह्रीं स्वाहा) सुषुम्ना के मार्ग में विराजमाना है ॥४६-४८॥

अपरैकं प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परम-गोपनम् ॥४९
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य गङ्गायै तदनन्तरम् । पुनर्मायां समुद्धृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥५०

दूसरा एक परम गोपनीय मन्त्र कहूँगा। पहले 'प्रणव' (ॐ) का उद्धार कर उसके बाद 'गङ्गायै', फिर 'माया' (ह्रीं) का उद्धार कर इस मन्त्र (ॐ गङ्गायै ह्रीं) का उच्चारण करे ॥४९-५०॥

अपरैकं प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परम - दुर्लभम् । माया-वीजं समुद्धृत्य गङ्गायै तदनन्तरम् ।
पुनर्मायां समुद्धृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥५१

एक अन्य अति दुर्लभ मन्त्र बताऊँगा—'माया'-बीज (ह्रीं) का उद्धार कर उसके बाद 'गङ्गायै', फिर 'माया' (ह्रीं) का उद्धार कर इस मन्त्र (ह्रीं गङ्गायै ह्रीं) का उच्चारण करे ॥५१॥

अपरैकं प्रवक्ष्यामि सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितम् । माया-वीजं समुद्धृत्य पुनः प्रणवमुद्धरेत् ॥५२
ततो गङ्गा - पदं देवि ! चतुर्थ्यन्तं कुरु प्रिये ! पूर्व-वीज-द्वयं प्रोक्त्वा मन्त्रमेतं जपं कुरु ॥५३

एषा सप्ताक्षरी विद्या सदा मे शिरसि स्थिता । एषा ते कथिता गङ्गा या गङ्गा-मूर्ति-धृक् स्वयं॥५४

दूसरा एक मन्त्र कहूँगा, जो सुषुम्ना-मार्ग में संस्थित है—'माया'-बीज (ह्रीं) का उद्धार कर फिर 'प्रणव' (ॐ) का उद्धार करे । तब, हे प्रिये देवि ! 'गङ्गा' शब्द को चतुर्थ्यन्त अर्थात् 'गंगायै' बनाये । प्रथम दोनों बीज ('ह्रीं' और 'ॐ') कहकर इस मन्त्र (ह्रीं ॐ गङ्गायै ह्रीं ॐ) का जप करे । यह सप्ताक्षरी विद्या सदा मेरे शिर में विराजमान है । तुमसे मैंने यह गंगा बताई है, जो स्वयं गंगा-स्वरूप को धारण करती है ॥५२-५४॥

अनेन ध्यान-मार्गेण मन्त्र-मार्गेण पार्वति ! पूजयेत् सततं गङ्गां तस्य सिद्धिरदूरतः ॥५५

दिने दिने जपित्वा वै गङ्गा-स्नान-फलं लभेत् । गङ्गा-स्नानं देवि ! न पूजा - जपमारभेत् ॥५६

हे पार्वति ! ध्यान और मन्त्र के इस मार्ग से जो गंगा की सदा पूजा करता है, उसे शीघ्र ही सिद्धि मिलती है । प्रति-दिन जप करने से गंगा-स्नान का फल मिलता है । गंगा-स्नान किए बिना पूजा और जप का प्रारम्भ नहीं करना चाहिए ॥५५-५६॥

गङ्गा-स्नानं विना देवि ! पूजयेद् यस्तु कालिकाम् । दश-विद्यां महेशानि ! पूजयेद् यस्तु भक्तितः ।
सर्वं तस्य वृथा देवि ! गङ्गा-स्नानं विना प्रिये ॥५७

तस्मादादौ जपेद् विद्यां गङ्गायाः सुर-पूजिते ! गङ्गाऽपि स्वयमायाति पूतार्थं साधकस्य च ॥५८

हे देवि ! गंगा-स्नान किये बिना जो कालिका की पूजा करता है, या हे महेशानि ! भक्ति-पूर्वक दश विद्याओं की पूजा करता है, उसका वह सब कर्म, हे देवि ! गंगा-स्नान के न होने से व्यर्थ होता है । अतः हे देव-पूजिते ! पहले गंगा की विद्या का जप कर ले । इससे साधक को पवित्र करने के लिए गंगा स्वयं आ जाती हैं ॥५७-५८॥

या गङ्गा महती माया कुण्डली पर-कुण्डली । सा गङ्गा परमेशानि ! ब्रह्माण्डं व्याप्य तिष्ठति ॥५९

यत्र क्षुद्र-नदी देवि ! यजेद् वै योजनं प्रिये ! सा गङ्गा चञ्चलापाङ्गि ! किञ्चिन्नास्त्यत्र संशयः ॥६०

गङ्गा-मन्त्रं समुच्चार्य क्षुद्र-नद्यास्तु पार्वति ! स्नापयेद् यस्तु पापात्मा सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥६१

न हि गङ्गा-समं किञ्चिन्मम ज्ञाने तु वर्त्तते । एतत् ते कथितं तत्त्वं गङ्गा-माहात्म्यमुत्तमम् ॥६२

हे परमेशानि ! जो गंगा महती माया, कुण्डलिनी और परा कुण्डली हैं, वे ही गंगा ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर विराजती हैं । हे देवि ! जो क्षुद्र नदी है, भले ही वह गंगा जी से योजन भर की दूरी पर हो, वह भी पूजन करे, तो गंगा ही हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । हे पार्वति ! गंगा-मन्त्र का उच्चारण कर जो पापी मनुष्य उस क्षुद्र नदी में स्नान करता है, वह सभी पापों से छूट जाता है । गङ्गा-समान मेरी समझ में कुछ नहीं है । तुमसे यह उत्तम गङ्गा-माहात्म्य मैंने कहा ॥५९-६२॥

॥ इति पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे पुरश्चरण-कालीन विविध मन्त्राः नाम तृतीयः पटलः ॥

चतुर्थः पटलः

साधने नार्याः साहचर्यम्

(साधना में नारी का सहचरी होना)

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

सुषुम्ना-मार्ग-मध्यस्थं यत् किञ्चिद् विद्यते तव । पुरश्चरण-रसोल्लासं तद् वदस्व दया-निधे ॥१

॥ श्रीमहादेव उवाच ॥

पुरश्चरण - रसोल्लासं बहुधा नग - नन्दिनि ! चन्द्र - सूर्य-ग्रहं भद्रे ! दुर्लभं भुवन - त्रये ।
अत्यन्त - दुर्लभं भद्रे ! निगदामि शृणु प्रिये ! पुरश्चरण - रसोल्लासं शृणुष्व बहुधा मम ॥२

शृणु स्थानं महेशानि ! कैलास - सदृशं पुरम् । गङ्गा काशी प्रयागश्च पुष्करं नैमिषं तथा ।
वदरी च तथा रेवा नर्मदा गण्डकी तथा । सिन्धुः सरस्वती चैव पीठानि विविधानि च ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं परात्परम् ॥३

गोष्ठं चतुष्पथं चैव त्रिपथं च वरानने ! निर्जनं च तथाऽरण्यं शून्य - गेहं तथैव च ॥४

पर्वतं च नदी - तीरं तथैव दीर्घिका - तटम् । अश्वत्थ-वृक्ष - मूले च वट - वृक्ष - तले तथा ॥५

धात्री - वृक्ष - तले देवि ! तथैव वकुलस्य च । यत्र पद्म - वनं भद्रे ! शुक्लं रक्तं वरानने !
द्रोण - पुष्पं च चार्वङ्गि ! यदि भाग्येन लभ्यते ॥६

अरुणादित्य-सङ्काशं जप-कालं परात्परम् । निरीक्ष्य युवतीं भार्यां यो जपेत् स शिवो भवेत् ॥७

एष स्थानेषु देवेशि ! यो जपेत् स शिवो भवेत् । यदेतत् कथितं देवि ! स्थानं कालं वरानने ।
सर्वेषां चञ्चलापाङ्गि ! सारं वक्ष्यामि पार्वति ! येनानुष्ठित-मात्रेण शिवः साक्षान्नरो भवेत् ॥८

स्व-नारी पर-नारी वा दीक्षिता यौवनोन्नता । तस्याः सङ्गं महेशानि ! यो जपेत् स शिवो भवेत् ।
चन्द्र - सूर्यस्य चार्वङ्गि ! ग्रहणे किं करिष्यति ॥९

किं तस्य चञ्चलापाङ्गि ! तीर्थैश्च शत-कोटिभिः । किं तस्य चञ्चलापाङ्गि ! पीठैश्च शत-कोटिभिः ॥१०

वाम - भागे तु संस्थाप्य दिव्य - नारीं वरानने ! स्व - कान्तां वा दीक्षितां सुन्दरीं यदि ।
पूर्वोक्त - न्यासमाचर्य ध्यानं कृत्वा वरानने ! अष्टोत्तर - शतं जप्त्वा कवचं प्रपठेत् ततः ॥११

अङ्ग-न्यासं समाचर्य अष्टाङ्गं वर-वर्णिनि ! तद्-योनौ न्यासमाचर्य मातृका-न्यासमुत्तमम् ।
योनि-न्यासं ततो देवि! तस्या योनौ न्यसेत् प्रिये ! मूल-मन्त्रं जपित्वा वै तस्या योनौ ततः प्रिये !
पश्यद् भक्ति-युतो भूत्वा चन्द्रं सूर्यं च पार्वति ! पुष्पांजल्यष्टकं दत्वा योनौ निक्षिप्य पार्वति !
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं स्वकीयं वर-वर्णिनि ॥१२

तस्या योनौ ततो देवि ! सन्ताडच बहु-यत्नतः । ताडचमाने जपेन्मन्त्रं यदि सिद्धिं च वांछति ॥१३

एकधा ताड़ने देवि ! एकधा यदि वोच्चरेत् । तत्कालं चञ्चलापाङ्गि ! कोटि-सूर्य-ग्रहैः समं ॥१४

एतस्मिन्नेव काले तु यदि पानं समाचरेत् । विजयां मादक - युतां सर्व - तन्त्र - परिष्कृताम् ।
माहात्म्यं तस्य चार्वङ्गि ! को वक्तुं शक्यते प्रिये ! स्त्री-सङ्गं विना देवि ! न हि सिद्धिः प्रजायते ।।१५
चन्द्र-सूर्यस्य पर्वे हि सस्त्रीकं प्रजपेद् यदि । राहोः स्पर्शो यदा देवि ! प्राप्यते कमलेक्षणे !
स्पर्श-मात्रेण चार्वङ्गि ! योनि-ताड़नमाचरेत् ।।१६
ताड़येच्चञ्चलापाङ्गि ! यावन्मोक्षमवाप्नुयात् । तत्र सिद्धो भवेद् देवि ! साधको भारते कलौ ।।१७
किं तस्य ध्यान-पूजायां पुरश्चर्याश्च किं पुनः । यत्-फलं तस्य कालस्य श्वेत-द्वीपे स लभ्यते ।।१८
तस्य कालस्य यं भोगं श्वेत-द्वीपे स लभ्यते । तत् सर्वं भारते देवि ! प्राप्यते नात्र संशयः ।
अतएव महेशानि ! स्त्री - सङ्गे जपमाचरेत् ।।१९
तस्या अङ्गं महेशानि ! सदाऽऽनन्द-मयं यतः । निरानन्द - मये काले न जपेन्नर - पामरः ।।२०
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं नारी - सङ्गे प्रतिष्ठति । या नारी प्रकृतिः साक्षान्मोहिनी मम सर्वदा ।
मोहिनी वासुदेवस्य ब्रह्मणश्चैव मोहिनी । यां गत्वा चञ्चलापाङ्गि ! दुःख-ध्वंसः प्रजायते ।।२१
सस्त्रीकं यो जपेद् देवि ! सामान्य-गृह-मध्यतः । स नरश्चञ्चलापाङ्गि ! शिवः साक्षान्न संशयः ।।२२
चन्द्र-ग्रहण-काले तु लिङ्गं योनौ क्षिपेद् यदि । रेतः पातं महेशानि ! स भवेदात्म-घातकः ।
यदेतत् कथितं देवि ! रेतः-पातं विना भवेत् ।।२३
नारिकेलोदकं कांस्ये न मद्यं मादकैर्युतम् । माद्यं च मादकं पीत्वा ब्रह्म-हत्यां व्यपोहति ।।२४
जम्बू - द्वीपस्य वर्षे च कलि - काले च भारते । गृहे गृहे भविष्यन्ति मद्यं निष्पाद्य ब्राह्मणाः ।
पीत्वा मद्यं महेशानि ! स भवेद् ब्रह्म-रूपकः ।।२५
महा-कुण्डलिनी साक्षात् सा स्त्री सम्भोग-रूपिणी । शिवः साक्षात् स पुरुष उभयोर्मिलनं भवेत् ।
उभयोर्मिलनाद् देवि ! शिवत्वं जायते ध्रुवम् ।।२६
ग्रहणे चन्द्र - सूर्यस्य रमणं क्रियते यदि । जप्त्वा विद्यां महेशानि ! स्वकीयां वर - वर्णिनि !
षोडशैरुपचारैश्च पूजिता तेन चण्डिका ।।२७
पूजिता कालिका तेन पूजिता तेन सुन्दरी । दश - विद्या महेशानि ! पूजितास्तेन पार्वति !
ब्रह्माद्याः देवताः सर्वाः पूजितास्तर्पिता इति ।।२८
गङ्गादि-सर्व-तीर्थानि विहाय नग-नन्दिनि ! कृत्वा शीघ्रं महेशानि ! स्त्री-सङ्गमति-गोपनम् ।
सूर्य-पर्व-शतैर्देवि ! तेन किं वर-वर्णिनि ।।२९
तस्मिंश्च समये देवि ! एकधा यदि वोच्चरेत् । तदा भवति देवेशि ! शत-कोटिर्न संशयः ।।३०
नाना-रूप-मयी देवि ! नाना-सुख-मयी सदा । सा नारी प्रकृतिर्देवि ! सा साक्षाज्जगदीश्वरी ।।३१
कुत्सितां चञ्चलापाङ्गि ! नारीं च पर-गोचराम् । परकीयां महेशानि ! शिव-मन्त्र-धरां प्रिये !
स्वकीयां परकीयां वा दीक्षिता यदि पार्वति ! तस्या सङ्गे महेशानि ! जपमेकं समाचरेत् ।।
तव सङ्गवत् यथा देवि ! सिद्धोऽहं कमलानने ! तथा कौल-वधू-सङ्गात् मम सिद्धिर्वरानने ।।३२
कुलीनोऽहं महा-देवि ! कुल-वर्त्म-प्रसादतः । यो वेत्ति कुल-तन्त्रं च कुल-मार्गं च पार्वति !
स कुलीनो महेशानि ! कुल-तन्त्र-प्रसादतः । अतएव महेशानि ! कुलीनोऽहं न चान्यथा ।।३३
कलौ भारत-वर्षे तु स्त्री-सङ्गे परमं पदम् । न धूपं चञ्चलापाङ्गि ! न दीपं वर-वर्णिनि !
नैवेद्यं चञ्चलापाङ्गि ! पाद्यं चार्घ्यं तथैव । यदेतच्चञ्चलापाङ्गि ! तन्त्रोक्तं षोडशं प्रिये !
द्रव्यं नास्ति महेशानि ! कथं सिद्धिर्भविष्यति ।।३४

अतएव महेशानि ! सदाऽऽनन्द-मयं यतः । पूजनं चञ्चलापाङ्गि ! स्त्रिया अङ्गे प्रतिष्ठितम् ।
सदाऽऽनन्द-मयो नारी स्वकीया पर-गोचरा । यस्या अङ्गे सर्व - पीठानि सन्ति वै ।।३५
तां विहाय महेशानि ! अन्य-स्थाने जपेद् यदि । सर्वं तस्य वृथा देवि ! उन्मत्तो भवति ध्रुवं ।।३६
पीठं च चञ्चलापाङ्गि ! कलौ गुह्यं भविष्यति । पञ्चाशत्-पीठ-संयुक्तं स्त्रीणामङ्गं शुभ-प्रदम् ।
तत् कथं मूढ़-लोकश्च विहाय श्री-प्रदं महत् । अन्य-पीठेषु तीर्थेषु क्षेत्रेषु प्रजपेत् प्रिये ।।३७
विहित-लक्षणां नारीं यदि नाप्नोति पार्वति ! नारी-त्यागं तदा कृत्वा अन्य-पीठं व्रजेत् प्रिये ।।३८
सा स्त्री तु परमेशानि ! साक्षात् प्रकृति-रूपिणी । नारी प्रसङ्गे चार्वङ्गि ! सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।
त्वत् - प्रसादान्महेशानि ! योगेन्द्रोऽहं यथा तथा ।।३९
लक्ष्मी-संसर्ग-मात्रेण विष्णुः सिद्धो यथा प्रिये ! सावित्री-सहितो ब्रह्मा सिद्धोऽभून्नग-नन्दिनि ।।४०
एवं हि त्रिदशाः सर्वे पन्नगाद्याः शुचि-स्मिते ! सिद्धिमायान्ति चार्वङ्गि ! वराका मानुषाः कुतः ।।४१
एतत् ते कथितं तत्त्वं सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितम् । अति-गुह्यं महत्-पुण्यं साक्षात्-सारं परात्परम् ।
रहस्यं सर्व-मन्त्राणां तन्त्राणां च नगात्मजे ! यद् द्रष्टं मार्ग-मध्यस्थं तत्-सर्वं कथितं मया ।।४२

।। इति पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-संवादे चतुर्थः पटलः ।।

हिन्दी-सारांश

इस पटल के प्रारम्भ के पाँच श्लोकों में चन्द्र और सूर्य-ग्रहण के महत्त्व का उल्लेख कर बताया है कि पुरश्चरण हेतु गङ्गा, काशी, प्रयाग, पुष्कर, नैमिषारण्य, बदरीनाथ, रेवा, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, सरस्वती, गो-शाला, चतुष्पथ, त्रिपथ, निर्जन, अरण्य, शून्य-गृह पर्वत, नदी-तट, जलाशय (झील, कूप, तालाब आदि) का तट, पीपल-बरगद-आँवला-बकुल वृक्षों के मूल भाग, श्वेत एवं रक्त कमल या द्रोण पुष्पों के समीप के स्थान पुरश्चरण के लिए प्रशस्त हैं। तदनन्तर साधना में 'नारी' अर्थात् स्त्री के सहयोग की महिमा का वर्णन है, जो रहस्य-मय है। उसे सद्-गुरु के उपदेश से ही समझा जा सकता है। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि नारी मात्र श्री जगदम्बा का स्वरूप है। अतः स्त्रियों को उन्हीं जैसा पूज्य तो समझना चाहिये ही, साथ ही उन्हें प्रत्यक्ष देवी-रूप मानकर विधि-वत् उनकी पूजा कर उनका दर्शन करते हुये मन्त्र का जप भी करना चाहिये। यदि नारी के प्रति इस प्रकार का पूज्य - भाव यथार्थ-रूप में कोई रख सके, तो उसके लिए उपर्युक्त गङ्गादि तीर्थ-स्थानों की कोई आवश्यकता नहीं है। नारी के सहयोग से वह वांछित सिद्धि सहज ही प्राप्त कर सकता है। यही इस पटल का सारांश है।

पंचमः पटलः

श्मशान-शोधनम्

(श्मशान-शोधन की विधि)

[सारांश—इस पटल में श्मशान के शोधन की विधि में 'हेलकी'—मन्त्र का उल्लेख किया है, किन्तु उसे स्पष्ट नहीं किया है। साथ ही, कलियुग में श्मशान-साधन को निषिद्ध भी बताया है। श्मशान - साधन की अपेक्षा 'पत्नी-साधन' को ही कल्याणकारी कहा गया है।]

॥ श्रीमहा-देव उवाच ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्मशानं दुर्लभं प्रिये ॥ १ ॥

न शस्तं परमेशानि ! कलि - काले च भारते । कलि-काले न कर्तव्यं श्मशान-साधनं महत् ॥ २

क्षुद्र-रूपाः जनाः सर्वे पाषण्डा नर - पामराः । अतएव महेशानि ! न कर्तव्यं कदाचन ।
सर्व-दोष-मयं देवि ! कलि-काले च भारते ॥ ३ ॥

यदीच्छेदात्मनो मृत्युं तदैव सहसा प्रिये ! गत्वा श्मशान-मध्यं च साधने चित्तमाविशेत् ॥ ४
श्मशान-साधनं देवि ! शृणुष्व वर-वर्णिनि ॥५॥

शनौ वा कुज-वारे वा श्मशान - गमनं यदि । न करोति स पापात्मा जपश्च विफलो भवेत् ॥ ६

गत्वा चकित - मात्रेण दशधा जपमाचरेत् । प्रथमं हेलकी - मन्त्रं पठेन्नागमनं चरेत् ।
तदुक्तं प्राकृतं मन्त्रं हेलकी सर्वं - सिद्धिदा । श्मशान-साधनं देवि ! सम्पूर्णं भवति प्रिये ॥ ७

पत्नी-साधन-तुल्यं च नास्ति ज्ञाने तु मामके । यावता ईश्वरी साक्षात् सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी ॥ ८

विहाय सुलभां यस्तु श्मशानं यदि गच्छति । सर्वं तस्य वृथा देवि ! उन्मत्तो जायते ध्रुवम् ।
स दुष्टः स च पापिष्ठः सर्व-धर्म-बहिष्कृतः । पुरश्चरण-रसोल्लासमज्ञात्वा यदि गच्छति ॥ ९

अदीक्षिता यदा नारी पुरुषो वा अदीक्षितः । दृष्ट्वा तु तत्क्षणाद् देवि ! सर्व-पाप-युतो भवेत् ।
न कोऽपि परमेशानि ! साधयेत् शव-साधनम् । दीक्षितो दीक्षितां तां तु दृष्ट्वा देवत्वमाप्नुयात्॥१०

श्मशानं तु महेशानि ! यः पश्येत् पुरुषोत्तमः । किं तस्य ध्यान-पूजायां गङ्गा-स्नानेन किं पुनः ॥११

सर्वं-तीर्थ-मयः सोऽपि सर्वागम - मयः सदा । स योगी योग - मध्ये तु मम तुल्यो न संशयः ॥१२

श्मशाने चञ्चलापाङ्गि ! वृहद्-भयमुपस्थितम् । श्मशानं वर्जयेद् धीमान् कलि-काले तु भारते ॥१३

एतत् ते कथितं देवि ! सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितम् । रहस्यं साधकानां च अति-गुह्यं परात्परम् ॥
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥ १४ ॥

॥ इति पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-संवादे श्मशान-शोधनं नाम पञ्चमः पटलः ॥

षष्ठः पटलः

दीक्षा-निरूपणम् एवं तत्स्थानादि-निर्देशः

(दीक्षा का निरूपण और उसके स्थानों का निर्देश)

॥ श्रीमहा-देव उवाच ॥

अपरेकं प्रवक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् । सुषुम्ना - मार्ग-मध्यस्थं रहस्यं सर्व - सिद्धिदम् ॥ १

श्री महादेव ने कहा—सुषुम्ना-मार्ग के मध्य में स्थित एक अन्य श्रेष्ठतम सर्व-सिद्धि-दायक रहस्य बताऊँगा ॥१॥

पूर्वं-विद्यां समुद्धृत्य वट - पत्रेषु सुन्दरि ! गृहीत्वा सु - गुरोर्वक्त्राद् गृह्णीत बहु-यत्नतः ॥ २

गणित्वा यदि विद्यां तां गृह्णीयान्नर - पामरः । तदेव सहसा देवि ! परित्यागो विधीयते ॥ ३

हे सुन्दरि ! गुरु-मुख से पूर्वोक्त विद्या को ग्रहण कर बड़ी सावधानी से बरगद के पत्तों पर उद्धार कर उसे ग्रहण करे । हे देवि ! गणना कर कोई नराधम यदि उस विद्या को ग्रहण करता है, तो उसे सहसा त्यागना पड़ता है ॥२-३॥

यानि यानि च तन्त्राणि मन्त्राणि वर-वर्णिनि ! सुषुम्ना-मार्ग-मध्यस्थं दृष्टं यत् कथयामि ते ॥४

हे श्रेष्ठ वर्णवाली ! सुषुम्ना - मार्ग के मध्य में जो-जो तन्त्र और मन्त्र दृष्टि-गत होते हैं, उन्हें तुमसे कहता हूँ ॥४॥

गुरु-पूजां विधायादौ स्रक् - चन्दन - विभूषणैः । अलङ्कारैर्विचित्रैश्च स्वर्ण-रत्नादि-निर्मितैः ॥ ५

वसनैरति - सूक्ष्मैश्च शुक्लै रक्तैस्तथाऽपरैः । पीतैः कृष्णैश्च चार्वङ्गि ! पूजयेद् गुरुमुत्तमम् ॥ ६

चतुर्विधैर्भोजनैश्च स्वर्ण - पात्रैर्मनोहरैः । षोडशैरुपचारैश्च स्वर्ण - रजत - निर्मितैः ॥ ७

पान-पात्रैर्महेशानि ! शुद्ध-स्वर्ण - विनिर्मितैः । ताम्बूलैश्च स-कर्पूरैर्नाना-गन्ध-समन्वितैः ॥ ८

स्वर्ण-पात्र-युतैर्देवि ! शिव - सिंहं प्रपूजयेत् । अनेन विधिना देवि ! पूजयेज्जगदीश्वरम् ॥ ९

ततः परं वरारोहे ! गुरु-दारान् प्रपूजयेत् ॥ १० ॥

सबसे पहले माला, चन्दन, स्वर्ण, रत्नादि से बने सुन्दर आभूषणों, अति महीन श्वेत, लाल, पीले और श्याम वस्त्रों से उत्तम गुरु की पूजा करे । सोने और चाँदी के बने मनोहर पात्रों में चार प्रकार के भोजनों, सोलह उपचारों, शुद्ध सोने के बने पान-पात्रों, विविध सुगन्धों एवं कपूर से युक्त ताम्बूलों को स्वर्ण-पात्र में रखकर हे देवि ! जगदीश्वर शिव का विधि-पूर्वक पूजन करे । इसके बाद गुरु-परिवार की स्त्रियों की पूजा करे ॥५-१०॥

षोडशैरुपचारैश्च इष्ट-देवीं सु-भक्तितः । आदौ गुरुं ततो देवीं सम्पूर्णं पूजयेत् प्रिये !
अतः परं पूर्व-विद्यामुद्धृत्य नग-नन्दिनि ! दृष्ट्वा गुरुस्ततो देवीं साक्षाद् ब्रह्म-स्वरूपिणीम् ।
शिष्यस्य बीजं कर्णेषु कथयेदविशेषतः । ततः शिष्यो महात्मा स लक्षमेकं जपेत् प्रिये ।।११

सोलह उपचारों से भक्ति-पूर्वक इष्ट-देवता की पूजा करे । हे प्रिये ! पहले गुरु की, तब देवी की सब प्रकार से पूजा करनी चाहिये । इसके बाद हे पार्वति ! पूर्वोक्त विद्या का उद्धार कर गुरुदेव ब्रह्म-स्वरूपिणी देवी का साक्षात् ध्यान कर शिष्य के कानों में विशेष रीति से बीज सुनायें । तब हे प्रिये ! वह महात्मा शिष्य एक लाख जप करे ।। ११ ।।

प्रत्यहं प्रजपेद् विद्यां यावल्लक्षं समाप्यते । तदाभ्यासो भवेद् देवि ! विद्यायाः वर-वर्णिनि ।।१२
ततः स गुरवे दत्वा पूजाऽनुष्ठानमुत्तमम् । गृह्णीयाच्चञ्चलापाङ्गि ! कवचं मन्त्र-सम्मतम् ।।१३

हे देवि ! एक लाख जप पूरा होने तक प्रति-दिन विद्या का जप करे । तभी हे सुन्दर वर्णवाली ! अभ्यास होगा । तब हे चञ्चल-नेत्रे ! वह गुरु को उत्तम पूजा का अनुष्ठान भेंट कर मन्त्र-सम्मत 'कवच' को ग्रहण करे ।। १२-१३ ।।

न तिथिर्न व्रतं देवि ! न होमो वर - वर्णिनि ! शिष्यमाहूय कृपया गुरुणा दीयते यदि ।
तदा लग्नादिकं सर्वं व्यर्थं भवति पार्वति ।।१४।।

न तिथिर्न च च भद्रा च गुरौ तुष्टे न किञ्चन । गुरौ तुष्टे महेशानि ! शुद्ध-काले मनोरमे ।
किं करिष्यन्ति तत्-कालाः सिद्धान्तं वद साम्प्रतम् ।।१५।।

दीक्षायां चञ्चलापाङ्गि ! कं प्रधानं वद प्रिये ! यत्रास्ते चञ्चलापाङ्गि ! अशुद्धः काल-दुर्गमः ।।१६
तत्रास्ते गुरु-देवश्च शिवः साक्षान्न संशयः । उभयोः सङ्गमे काले कस्त्याज्यो वद पार्वति ।।१७

हे देवि ! यदि गुरुदेव कृपा कर शिष्य को बुलाकर दें, तो हे सुन्दर वर्णवाली ! न तिथि के विचार की, न व्रत की और न होम की आवश्यकता होती है । हे पार्वति ! लग्नादि सभी विचार निरर्थक हो जाते हैं । गुरु के प्रसन्न होने पर न तिथि और न भद्रा—किसी का विचार नहीं होता । हे महेशानि ! गुरु के प्रसन्न होनेवाले मनोहर काल में वे काल क्या करेंगे ? इस सम्बन्ध में क्या सिद्धान्त है ? हे प्रिये, चञ्चल-नेत्रे ! दीक्षा में मुख्य कौन है ? जब कठिन अशुद्ध काल होता है, तब उस समय गुरुदेव साक्षात् शिव के समान होते हैं, इसमें सन्देह नहीं । उन दोनों के बीच हे पार्वति ! कौन त्याज्य है ? बताओ ।।१४-१७।।

।। श्री पार्वत्युवाच ।।

अत्याज्यो देव-देवेश ! परं - ब्रह्म गुरुः प्रभो ! समीपे गुरु-देवस्य शुद्धाशुद्धं न चाचरेत ।।१८

गुरोर्दर्शन - मात्रेण सूर्य - पर्वमुपस्थितम् । तत् कथं देव-देवेश ! गुरुस्त्याज्यो महा-मते ।।१९
गुरुरेव शिवः साक्षात् तत्-पत्नी परमेश्वरी । गुरोः समीपे देवेश ! वित्त-शाठ्यं विवर्जयेत् ।।२०

श्रीपार्वती बोलीं—हे देव-देवेश्वर, प्रभो ! पर-ब्रह्म-स्वरूप गुरु अत्याज्य हैं । गुरु-देव के समीप शुद्ध और अशुद्ध का विचार नहीं करना चाहिये । गुरुदेव के दर्शन मात्र से सूर्य-जैसा पर्व-काल उत्पन्न हो जाता है, तो हे मनीषी ! गुरु कैसे त्याज्य हो सकते हैं ? गुरु ही साक्षात् शिव हैं और उनकी पत्नी परमेश्वरी । हे देवेश्वर ! गुरु के समीप धन की शठता (कंजूसी) न करनी चाहिए ।।१८-२०।।

।। श्रीमहादेव उवाच ।।

ध्यानेन योग-मार्गेण श्मशान - साधनेन किम् ? यस्य भक्तिर्गुरौ देवि ! वर्तते देव-वत् प्रिये !
स सिद्धः स गणः सोऽपि सोऽपि विष्णुर्न संशयः । गुरु-भक्ति विना देवि ! न हि सिद्धिः प्रजायते ।
श्रीगुरोः कृपया काले यदि विद्यां लभेत् प्रिये ! तदैव सहसा सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ।।२१
पाद-पद्मं गुरोर्देवि ! यदि भाग्य-वशाल्लभेत् । तत् - कालं परमं कालं सूर्य-पर्व-समं प्रिये ।।२२

श्रीमहा-देव ने कहा—ध्यान से, योग-मार्ग से और श्मशान-साधन से क्या प्रयोजन ? हे देवि ! गुरु में देवता के समान जिसकी भक्ति है, वही सिद्ध है, वही देवी का गण है, वही साक्षात् विष्णु-स्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं । गुरु-भक्ति के बिना, हे देवि ! सिद्धि नहीं मिलती । श्री गुरु की कृपा से समय पर यदि विद्या मिलती है, तो हे प्रिये ! अनायास सिद्धि मिल जाती है, इसमें कुछ भी विचार करने की बात नहीं है ।।२१-२२ ।।

गुरोर्दर्शन-मात्रेण अशुद्ध-काल - चञ्चलम् । नाशमायाति चार्वङ्गि ! अविचार्यमतः परम् ।।२३
शाठ्यात् क्रोधाच्छलाद् वापि यदि विद्यामुपास्मयेत् । स ब्रह्म-स्तेय-पापेन तामिस्रे नरके नरः ।
मन्वन्तर-त्रयं स्थित्वा पाप-योनिषु जायते ।।२४।।

हे देवि ! यदि भाग्य से गुरु के चरण-कमल मिल जायँ, तो वह समय सूर्य-पर्व के समान श्रेष्ठ काल होता है । हे सुन्दरि ! गुरु के दर्शन मात्र से अशुद्ध काल की अशुद्धता नष्ट हो जाती है, अतः उसका विचार नहीं करना चाहिए । शठता से, क्रोध से या छल से यदि कोई विद्या प्राप्त कर लेता है, तो वह मनुष्य ब्रह्म की चोरी के पाप से तामिस्र नरक में तीन मन्वन्तरों तक गर्हित योनियों में जन्म पाता है ।।२३-२४।।

यद् दत्तं गुरुणा देवि ! तदेवाक्षयमुत्तमम् । गुरोर्वाक्यं मूर्ध्नि धृत्वा सर्वदा यदि कारयेत् ।
तदेव सहसा सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा । गुरोर्वक्त्रं वरारोहे ! चन्द्र-वक्त्र-समं सदा ।।२५
एतत् ते कथितं सर्वं सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितम् । यो गुरुः स शिवः साक्षात् तत्-पुत्रो भैरवः स्वयम् ।।२६

हे देवि ! जो गुरु देता है, वही उत्तम और अक्षय फल-दाता है । गुरु के वचन को स्वीकार कर जो सदा कर्म करता है, वह अनायास ही सिद्धि पाता है, इसमें कुछ भी विचार करने की बात नहीं है । हे सुमुखि ! गुरु का मुख सदा चन्द्र-मुख के ही समान है ।।२५-२६

एतत् ते कथितं सर्वं सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितम् । यो गुरुः स शिवः साक्षात् तत्-पुत्रो भैरवः स्वयम् ।।२७

सुषुम्ना-मार्ग में स्थित ये सारी बातें तुमसे मैंने कहीं। जो गुरु हैं, वही साक्षात् शिव-स्वरूप हैं और उनके पुत्र स्वयं भैरव-स्वरूप हैं ।।२७ ।।

दीक्षायां चञ्चलापाङ्गि ! न च सङ्कल्पमाचरेत् । आत्मा जीवोऽव्ययः सूक्ष्मः सर्व-वेत्ता यदि प्रिये !
दीक्षायां चञ्चलापाङ्गि ! कस्य सङ्कल्पमाचरेत् ।।२८।।
ताम्रे तोयमुपादाय साक्षतं कुश-चन्दनम् । भक्तं मेधाविनं देवि ! प्रोक्षयित्वा प्रदापयेत् ।
अभ्युक्ष्य मन्त्र-वीजेन पूर्व-मन्त्रं प्रदापयेत् ।।२९

हे चञ्चल-नेत्रे ! दीक्षा में सङ्कल्प न करे। आत्मा ही जीव है, जो अव्यय है और सूक्ष्म है। सर्वज्ञ होने से किसका सङ्कल्प किया जायगा ? ताम्र-पात्र में अक्षत, कुश और चन्दन-सहित जल लेकर, हे देवि ! उससे बुद्धिमान् शिष्य का प्रोक्षण करे। फिर मन्त्र-वीज से अभ्युक्षण कर पूर्व-मन्त्र प्रदान करे ।।२८-२९।।

राश्यादि-गणनां कृत्वा यदि मन्त्रं प्रदापयेत् । तस्य सर्वं वृथा देवि ! अन्ते नरकमाप्नुयात् ।
कोटि-वंशान् समादाय रौरवं स नरो व्रजेत् ।।३०।।
उभयोश्चञ्चलापाङ्गि ! समान - फलमेव च । अतएव महेशानि ! गणनां वर्जयेत् सुधीः ।।३१

राशि आदि की गणना करके यदि मन्त्र दिया जाता है, तो वह सब व्यर्थ होता है और हे देवि ! अन्त में वह मनुष्य नरक में निवास करता है। हे चञ्चल-नेत्रे ! गुरु और शिष्य दोनों समान फल को पाते हैं। अतः हे महेशानि ! बुद्धिमान् गणना को मना करे ।।३०-३१

दीक्षा-कालं महेशानि ! गणना-रहितं सदा । ब्रह्म-स्वरूपिणी साक्षान्नित्या चाव्यय-रूपिणी ।
अतएव महेशानि ! गणनां कस्य करयेत् ।।३२।।
यतो निरक्षरं ब्रह्म अक्षरैः संयुतं यदि । यद्येवं चञ्चलापाङ्गि ! गणनां कुरुते सदा ।
प्रजायते ततो हानिर्वर्ण - बुद्धया वरानने ! गणना - रहितं यत् तु तदेव परमं पदम् ।।३३

हे महेशानि ! दीक्षा-काल सदा गणना-रहित होता है। साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपिणी नित्या अव्यय-रूपिणी है। अतएव गणना किसकी कराये ? ब्रह्म तो निरक्षर है। यदि वह अक्षरों से युक्त हो, तो हे चञ्चल-नेत्रे ! सदा गणना करे। हे सुमुखि ! उस दशा में वर्ण-बुद्धि होने से हानि ही होती है। जो गणना-रहित है, वही श्रेष्ठ पद है ।।३२-३३।।

यत्र यत्र विनिर्दिष्टं स्थानं परम - दुर्लभम् । सर्वेषामेव स्थानानां स्त्री-सङ्गं परं पदम् ।।३४
तस्मात् तु यत्नतो देवि ! स्त्री-सङ्गं कारयेद् बुधः । स्त्री-सङ्गं हि विना देवि ! पुरश्चर्या वृथा भवेत् ।।३५

जहाँ-जहाँ परम दुर्लभ स्थान बताए हैं, उन सब स्थानों में स्त्री का सङ्ग सबसे श्रेष्ठ है। इसलिये हे देवि ! बुद्धिमान् यत्न करके स्त्री का सङ्ग करे। हे देवि ! स्त्री के साथ हुये बिना पुरश्चरण व्यर्थ होता है। (यहाँ स्त्री-सङ्ग से तात्पर्य है सहस्रार-स्थित परम शिव के साथ कुण्डलिनी-शक्ति का सङ्ग या मिलन) ।।३४-३५।।

।। इति पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे दीक्षा-निरूपणं नाम षष्ठः पटलः ।।

सप्तमः पटलः

शव-सिद्धिः

(शव की सिद्धि)

एतद्-दिव्य-मतं भद्रे ! एतद्-वीर-मतं सदा । एतन्मतं महेशानि ! न पशौ शस्यते क्वचित् ।।१
दिव्य-वीर-मतं त्यक्त्वा पुरश्चर्यां यदाऽऽचरेत् । शत-कोटि-जपैर्नापि तस्य सिद्धिर्भविष्यति ।।२
एतत् सिद्ध-मतं भद्रे ! सुषुम्ना-वर्त्म-संस्थितम् । पुरश्चरण-रसोल्लासं सदा ब्रह्म-मयं प्रिये ।।३

हे भद्रे, महेशानि ! यह वीर-मत सदैव दिव्य-मत है । यह मत पशु-भाववाले व्यक्ति के लिए कभी प्रशस्त नहीं है । दिव्य वीर-मत को छोड़कर जब पुरश्चरण किया जाता है, तब सौ करोड़ जप से भी साधक को सिद्धि नहीं मिलती । हे प्रिये, भद्रे ! यह सिद्ध मत सुषुम्ना के मार्ग में स्थित है । पुरश्चरण के रस का उल्लास सदा ब्रह्म-मय होता है ।।१-३।।

गङ्गा-क्षेत्रं वरं त्यक्त्वा काशी-क्षेत्रं वरं त्यजेत् । त्यजेत् प्रयागं कावेरीं नर्मदां सिन्धुमेव वा ।।४
अन्यानि यानि तीर्थानि पीठानि विविधानि च । सर्वं त्यक्त्वा महेशानि ! स्त्री-सङ्गं यत्नतश्चरेत् ।।५

गङ्गा-क्षेत्र, काशी-क्षेत्र, प्रयाग, कावेरी, नर्मदा, सिन्धु को भले छोड़ दे । अन्य जो तीर्थ और विविध पीठ हैं, उन सबको भले छोड़ दे किन्तु हे महेशानि ! उन सबका त्याग कर स्त्री का सङ्ग प्रयत्न-पूर्वक करना चाहिए ।।४-५।।

स्त्री-सङ्गं यत्नतो देवि ! स्त्री-सङ्गं नान्यथा क्वचित् । रामो दाशरथिर्देवि ! सिद्धोऽभूत् सीतया सह ।।६
द्वारावत्यां कृष्ण-देवः सिद्धोऽभूत् सत्यया सह । अन्ये च पृथिवी-पालाः स्त्री-सङ्गे सिद्धिमागताः ।।७

हे देवि ! स्त्री-सङ्ग को यत्न-पूर्वक करना चाहिए क्योंकि वह कभी व्यर्थ नहीं होता । दशरथ-पुत्र राम सीता के साथ ही सिद्ध हुए । द्वारका में कृष्णदेव सत्यभामा के साथ सिद्ध हुए और अन्य राजाओं ने भी स्त्री-सङ्ग से ही सिद्धि पाई ।।६-७।।

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि सुन्दरं तन्त्र - सम्मतम् । एकदा चञ्चलापाङ्गि ! भवो विरह-तापितः ।
भूत्वाऽहं यत् कृतं देवि ! तच्छृणुष्व समाहिता ।।८।।

कामाख्या-मण्डले भद्रे ! श्मशानं बहु-भीषणम् । जाज्वल्य-मानं तं दृष्ट्वा चण्डाल-जनितं च यत् ।।९
गङ्गां शीघ्रमहं देवि ! जपं कर्तुं मनो दधे । आत्मना मनसा देवि ! एकीकृत्य प्रयत्नतः ।।१०

हे चञ्चल-नेत्रे ! इस सम्बन्ध में तन्त्र-सम्मत सुन्दर इतिहास कहता हूँ । एक बार हे देवि ! विरह से दुखी होकर मैंने जो कुछ किया, उसे ध्यान से सुनो । हे भद्रे ! कामाख्या-क्षेत्र में बड़ा भयानक श्मशान है । चाण्डाल द्वारा उसे प्रज्वलित देखकर हे देवि ! मैंने

तुरन्त ही प्रयत्न-पूर्वक आतमा और मन को एकाग्र कर गङ्गा किनारे जप करने का विचार मन में किया ।।८-१०।।

एतस्मिन् समये देवि ! बहु-विघ्नमुपस्थितम् । मम विघ्नेन देवेशि ! किं करिष्यति सुन्दरि ।।११
नास्ति मे चञ्चलापाङ्गि ! बाह्य-ज्ञानं हि कुत्रचित् । बाह्य-ज्ञाने महेशानि ! भयं सर्वमुपस्थितम् ।।१२

हे देवि ! इसी समय बड़ा विघ्न हुआ किन्तु हे सुन्दरि, देवेशि ! विघ्न मेरा क्या कर सकता था ! हे चञ्चल-नेत्रे ! मुझमें बाह्य ज्ञान तो रहता ही नहीं और हे महेशानि ! बाह्य ज्ञानवालों को ही सारे भय होते हैं ।।११-१२।।

एतस्मिन् समये विष्णुरागता मम सन्निधिम् । यदुवाच महेशानि ! तच्छृणुष्व समाहिता ।।१३

इसी समय विष्णु मेरे पास आये । हे महेशानि ! उन्होंने जो कुछ कहा, उसे ध्यान से सुनो ।।१३।।

किं करोषि महा-बाहो ! श्मशाने वद साम्प्रतम् । उच्चैर्जगाद हुंकारैर्विष्णुः सत्व-गुणाश्रयः ।।१४
श्रुत्वाऽहं चञ्चलापाङ्गि ! विहाय सहसा जपम् । अष्टोत्तर-शतं यत् तु जपं ब्रह्माण्ड-पूजिते ।।१५
तत्-तेजश्चञ्चलापाङ्गि ! प्रलयानल-सन्निभम् । उत्थितं सहसा देवि ! सत्वरं प्रययौ प्रिये ।।१६
तदेव कालिका-रूपं विष्णोर्भय - प्रदर्शनम् । तद् - दृष्ट्वा सहसा विष्णुर्महा-भयमवाप्नुयात् ।।१७
कम्पोऽभूद् विष्णु-देवस्य किं करोमि पिनाक-धृक् । किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मे निष्कृतिः प्रभो ।।१८
रक्ष रक्ष महा-देव ! किं करोमि ह्यहं प्रभो ! त्वां बिना देव-देवेश ! न हि त्राता च कुत्रचित् ।।१९

सत्व-गुण के आश्रय विष्णु ने ऊँचे स्वर में कहा कि 'हे महा-बाहु ! अब बताओ, श्मशान में मैं क्या करूँ ?' हे चञ्चल-नेत्रे ! अचानक यह सुनकर मैंने ब्रह्माण्ड-पूजिता के किये हुये १०८ संख्यक जप को छोड़ दिया । तब हे देवि ! एकाएक प्रलयाग्नि के समान तेज प्रकट हुआ, जिसने शीघ्र ही कालिका-रूप को धारण किया और विष्णु को भय दिखाने लगा । उसे देखकर विष्णु अचानक ही बड़े भय-भीत हुये । विष्णु-देव काँपने लगे और बोले कि 'हे पिनाक - धारी ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? हे प्रभो ! मेरा निस्तार नहीं है । हे महा-देव ! रक्षा करो । प्रभो ! मैं क्या करूँ ? हे देव-देवेश ! तुम्हारे बिना कहीं कोई रक्षक नहीं है" ।।१४-१९।।

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

शृणु मूढ़ महा-विष्णो ! श्मशानं प्रलयानलम् । न विधेयं महा-विष्णो ! कथमागमनं तव ।।२०
एवं वदति तस्येशे भूत्वा क्षिप्रं हरिस्तनुः । ब्रह्माण्डं रमयामास क्षिति-मध्ये रमान्वितः ।।२१
तस्य पश्चान्महेशानि ! मम तेजो दुरासदम् । तिष्ठ तिष्ठ महा-बाहो ! इति कृत्वा च धावति ।।२२
तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुः कृष्ण-वर्णो ह्यभूत् तदा । शुक्ल-वर्णं परित्यज्य कृष्णोऽभूद्धरिरव्ययः ।
पुनरायान्महेशानि ! सन्निधिं मम सत्वरम् ।।२३।।

श्रीमहादेव बोले—'हे मोह में पड़े महा-विष्णु ! श्मशान तो प्रलयाग्नि है, साध्य नहीं है । किसलिए तुम आये हो ?' उनके ऐसा कहने पर विष्णु सूक्ष्म-शरीर होकर पृथ्वी के मध्य में लक्ष्मी से युक्त हो ब्रह्माण्ड में घूमने लगे । हे महेशानि ! उनके पीछे मेरा असह्य तेज 'हे महा-बाहो ! ठहरो, ठहरो' कहता हुआ दौड़ा । उस वचन को सुनकर अव्यय विष्णु उज्ज्वल वर्ण को छोड़कर श्याम वर्ण के हो गए । फिर वे शीघ्र ही मेरे पास आये ।।२०-२३।।

तं दृष्ट्वा चञ्चलापाङ्गि ! विष्णुमत्यन्त-दुःखितम् । मा भैर्मा भैर्महा-विष्णो ! कथमेवं कृतं भवान् ।।२४
रे पुत्र, कमला-नाथ, मूढ़ ! त्वं श्रृणु मे वचः । तव त्राता न पश्यामि महा-मायां विनेश्वरीम् ।
आगच्छ प्रविशेः शीघ्रं वामाङ्गे मम सत्वरम् ।।२५।।

हे चञ्चल-नेत्रे ! अति दुखी उन विष्णु को देखकर मैंने कहा कि 'हे महा-विष्णो ! मत डरो, मत डरो । तुमने ऐसा क्यों किया ? हे पुत्र, लक्ष्मी-पते ! मेरी बात सुनो । महा-माया ईश्वरी को छोड़कर अन्य किसी को मैं तुम्हारा रक्षक नहीं देखता । आओ, अति शीघ्र मेरे बाँएँ अङ्ग में प्रवेश कर जाओ' ।।२४-२५।।

तच्छ्रुत्वा वचनं देवि ! वामाङ्गे मम सत्वरम् । प्रविश्य सहसा विष्णुर्वञ्चाङ्गं मे कृतं प्रिये ।।२६
एतस्मिन् समये देवि ! तत् तेजः प्रलयानलम् । आगत्य यदुवाच तं सावधानावधारय ।।२७

हे देवि ! उस बात को सुनकर विष्णु तुरन्त ही मेरे बाँएँ अङ्ग में प्रवेश कर गये । इसो बोच वह प्रलयाग्नि का तेज आकर जो बोला, उसे सचेत होकर सुनो ।।२६-२७।।

वृष-ध्वज, महा-बाहो ! अर्द्धाङ्गं तव सुव्रत ! प्रविश्य सहसा विष्णुं करोमि भस्मसात् क्षणात् ।।२८

'हे वृष-ध्वज, सु-व्रत, महा-बाहो ! तुम्हारे वामाङ्ग में प्रवेश कर मैं विष्णु को क्षण भर में भस्म कर डालूँगा' ।।२८।।

या काली परमेशानि ! स्वयं हुङ्कार-रूपिणी । ततोऽहं चञ्चलापाङ्गि ! साक्षात् हुङ्कार-रूपिणी ।।२९
या माया चञ्चलापाङ्गि ! स्वयं काली-स्वरूपिणी । निपीय मम यन्नाम विष्णोर्भय-प्रदर्शनात् ३०

हे परमेशानि ! जो काली स्वयं हुङ्कार-रूपिणी है, वही काली - स्वरूपिणी माया है । विष्णु को भयभीत करनेवाली वह मेरी ही शक्ति है ।।२९-३०।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

मृत्युञ्जय, महा-बाहो ! एवं पृच्छामि तद् वद । दक्षाङ्गं तव देवेन्द्र ! सन्त्यज्य वाम-संज्ञकम् ।
कथं करोति स विष्णुरिति मे निश्चयं वद ।। ३१ ।।

श्री देवी बोलीं—हे मृत्युञ्जय, महा-बाहो, देवेन्द्र ! तुम्हारे दक्षाङ्ग को छोड़कर उन विष्णु ने तुम्हारे वामाङ्ग को कैसे ग्रहण किया, यह मैं पूछती हूँ । उसे बताइये ।।३१।।

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

शृणु चार्वङ्गि ! सुभगे ! वामाङ्गस्य च लक्षणम् । वामाङ्गं मम देवेशि ! स्वयं प्रकृति-रूपिणी ।।३२
सर्वेषां जीव-जन्तूनां वामाङ्गः प्रकृतिः स्वयम् । यत्रास्ते सततं देवि ! काम - वीज-स्वरूपिणी ।।३३
सर्व-तेजो-मयं देवि ! वामाङ्गमतएव च । अतएव महेशानि ! वामाङ्गः प्राविशद्धरिः ।।३४

श्रीमहा-देव बोले—'हे सुन्दरि ! वामाङ्ग के लक्षण सुनो । हे देवेशि ! मेरा वामाङ्ग स्वयं प्रकृति - स्वरूप है । सभी जीव - जन्तुओं का वामाङ्ग स्वयं प्रकृति ही है, जिसमें हे देवि ! काम-वीज-स्वरूपिणी वह सदा रहती है । अतः वामाङ्ग सभी तेजों से पूर्ण रहता है । इसी से हे महेशानि ! विष्णु ने वामाङ्ग में प्रवेश किया ।।३२-३४।।

हरि-हरात्मकं दृष्ट्वा सदा तिष्ठति योगिनी ।। ३५ ।।
अर्द्ध-नारीश्वरं चैव यथा मे वर-वर्णिनि ! एवं बहु - विधाकारं विग्रहं मे नगात्मजे ।।३६
विविधं विग्रहं देवि ! सदा मम न चान्यथा । सविकारं महेशानि ! संयुक्तं हरिणा सह ।
निर्विकारं महेशानि ! गौरी-सह शुचि-स्मिते ।।३७।।

हरि-हरात्मक स्वरूप को देखकर योगिनी ठहर जाती है । उसी प्रकार हे सुन्दर वर्णवाली ! मेरा बहु-प्रकार का अर्द्ध-नारीश्वर स्वरूप है । हे देवि ! मेरे विविध स्वरूप हैं । हरि के साथ हे महेशानि ! मेरा रूप विकार-सहित रहता है और हे पवित्र मुस्कान-वाली ! गौरी के साथ मेरा स्वरूप निराकार रहता है ।।३५-३७।।

यदेतत् तु शरीरं मे अधुना कमलेक्षणे ! सदानन्द - मयं देवि ! एतत् तु हृदयं महत् ।
तवाङ्ग-सङ्गमाद् भद्रे ! शिवोऽहं सर्व-सिद्धिदः । कण्ठे च गरलं देवि ! न कलौ भारते क्वचित् ।
यदीच्छेदात्मनो मृत्युं यदि तून्मत्तमिच्छति । तदेव परमेशानि ! श्मशाने जपमाचरेत् ।।३८

हे कमल-नेत्रे ! इस समय मेरा यह शरीर सदानन्द-मय है । इसका हृदय विशाल है । तुम्हारे अङ्ग के संयोग से मैं सर्व-सिद्धि-दायक शिव हूँ ! हे देवि ! मेरे कण्ठ में विष रहता है । कलि-युग में भारत में यह कहीं नहीं है । यदि कोई अपनी मृत्यु चाहता है या उन्मत्त बनना चाहता है, तभी हे परमेशानि ! उसे श्मशान में जप करना चाहिये ।।३८

श्मशानं चञ्चलापाङ्गि ! दुर्लभं मम सम्पदम् । श्मशान - साधनं मन्त्रं शृणुष्व वर-वर्णिनि !
यज्जप्त्वा परमेशानि ! हरिः स्थिर-तरो वभौ ।।३९।।

हे चञ्चल-नेत्रे ! श्मशान मेरा श्रेष्ठ स्थान है । हे सुन्दर वर्णवाली ! श्मशान-साधन का मन्त्र सुनो, जिसका जप कर हे परमेशानि ! हर को स्थिरता प्राप्त हुई ।।३९।।

प्रणवं च समुद्धृत्य हुङ्कारमुद्धरेत् ततः । ततो मायां समुद्धृत्य काम - वीजं समुद्धरेत् ।
श्मशान-कालिके पश्चाद् पूर्व-वीजानि चोद्धरेत् । इति मन्त्रं महेशानि ! जप्त्वा विष्णुरनव्ययः ।
शान्तिं च परमां लब्ध्वा क्षिप्तत्वं प्रजहौ क्षणात् ।।४०।।

प्रणव (ॐ), हुङ्कार (हुं), माया (ह्रीं), काम-वीज (क्लीं), 'कालिके', अन्त में

पूर्व-वीज (ॐ हुं ह्रीं क्लीं)—यह मन्त्र (ॐ हुँ ह्रीं क्लीं श्मशान-कालिके ! ॐ हुँ ह्रीं क्लीं) जप कर अव्यय विष्णु ने क्षण भर में परमा शान्ति को प्राप्त कर लिया ।।४०।।

कुजे वा शनि - वारे वा इमां विद्यां वरानने ! अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा श्मशानं दृश्यते यदि ।
श्मशान-फलमाप्नोति मम तुष्टिः प्रजायते । अन्यथा निष्फला पूजा जपश्च निष्फलो भवेत् ।।४१
एतत् ते कथितं देवि ! सुषुम्ना-मार्ग-संस्थितं । तत् सर्वं कथितं देवि ! त्रैलोक्येषु च दुर्लभम् ।।४२
दुर्लभं सर्व-देवानां गन्धर्वानां तथैव च । दुर्लभं नाग - लोकानां यक्षाणां नग - नन्दिनि !
पुष्कर-द्वीप - वासिनां श्वेत - द्वीप - निवासिनाम् । अन्येषां सर्व-द्वीपानां दुर्लभं वर-वर्णिनि !
कलौ तु चञ्चलापाङ्गि ! भारते मानुषः कुतः । तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन श्मशानं वर्जयेत् कलौ ।।४३

हे सुमुखि ! बुध या शनि के दिन इस विद्या का १०८ बार जप कर यदि श्मशान का दर्शन करे, तो श्मशान का फल मिलता है, मैं प्रसन्न होता हूँ । अन्यथा पूजा और जप निष्फल होता है । हे देवि ! सुषुम्ना-मार्ग में स्थित त्रैलोक्य-दुर्लभ यह सब बातें मैंने तुमसे कहीं । सभी देवों, गन्धर्वों, नागों, यक्षों, पुष्कर-द्वीप और श्वेत-द्वीप तथा अन्य सभी द्वीपों के निवासियों के लिये यह दुर्लभ है । कलियुग में भारत में ऐसा मनुष्य कहाँ ? अतः सभी प्रयत्न करके कलियुग में श्मशान-साधन को मना करे ।।४१-४३।।

श्मशानं च यथा वर्ज्यं तथैव वर्जयेच्चवम् । मृत - गात्रं महेशानि ! यदि कोऽत्र न पश्यति ।
साधको दृष्टि-मात्रे तु शव-सिद्धिः प्रजायते ।।४४।।

एवं गुह्य-तरं कृत्वा यदि साधनमाचरेत् । तदा सिद्धिर्भवेद् देवि ! नान्यथा कल्प-कोटिभिः ।
अतएव महेशानि ! न सिद्धिर्भारते कलौ ।।४५।।

दशधा प्रजपेद् विद्यामनिरुद्ध - सरस्वतीम् । दृष्ट्वा शवं महेशानि ! भावयेच्छिव-रूपिणम् ।।४६
चण्डालं ब्राह्मणं वापि शवं दृष्ट्वा जपं चरेत् । तदैव सहसा देवि ! शव-साधनमाप्नुयात् ।।४७
इष्ट - मन्त्रं महेशानि ! भावयेच्छिव-रूपिणम् ।।४८।।

हे महेशानि ! जिस प्रकार श्मशान मना है, उसी प्रकार शव को भी मना करना चाहिये । हे महेशानि ! यदि मृत शरीर को कोई नहीं देखता, तो साधक केवल उसे देखकर ही शव-सिद्धि को पा लेता है । इस प्रकार अति गुप्त भाव से यदि साधना की जाय, तो हे देवि ! सिद्धि मिलती है, अन्यथा करोड़ों कल्प से भी सिद्धि नहीं मिलती । इसी से कलियुग में भारत में सिद्धि नहीं होती । हे महेशानि ! शव को देखकर उसे शिव-रूप समझे और अनिरुद्ध सरस्वती विद्या का दस बार जप करे । हे देवि ! चण्डाल का हो या ब्राह्मण का, किसी भी शव को देखकर जप करे, तो अचानक ही शव-साधन का ज्ञान हो जाता है । हे महेशानि ! इष्ट-मन्त्र को शिव-स्वरूप समझे ।।४४-४८।।

।। इति पुरश्चरण-रसोल्लासे देव-देवी-सम्वादे सप्तमः पटलः ।।

अष्टमः पटलः

आशु-सिद्धि-लाभस्य उपायः

(शीघ्र - सिद्धि- प्राप्ति का उपाय)

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

अपरैकं प्रवक्ष्यामि द्रुतं सिद्धि-प्रदायकम् ।।१

सहस्रारे ततो नित्ये पङ्कजे परमाद्भुते । ध्यात्वा परम-यत्नेन शिव-सिंहं च पार्वति !

पद्मस्य बीज-कोषे तु भावयेत् स्व-गुरुं सदा ।।२

तस्य वामे च तत्-पत्नीं सा साक्षादीश्वरी प्रिये ।।३

उत्तराभिमुखी-भूय सदा वसति साधकः । तदेव परमेशानि ! देवो दक्ष-मुखो भवेत् ।।४

श्री महा-देव ने कहा—हे पार्वति ! शीघ्र सिद्धि-दायक एक दूसरा उपाय बताऊँगा । सहस्रार के सनातन कमल में अति यत्न-पूर्वक श्रेष्ठ शिव - सिंह (गुरुदेव) का ध्यान करे । सदैव पद्म के बीज-कोष में अपने गुरुदेव का और उनकी बाईं ओर हे प्रिये ! साक्षात् भगवती-स्वरूप उनकी पत्नी का ध्यान करना चाहिये । साधक सदैव उत्तर की ओर मुख किये रहे, तभी हे परमेश्वरि ! गुरुदेव का मुख दाईं ओर रहेगा ।।१-४

मनसा गन्ध-पुष्पादीन् दत्वा सम्पूजयेद् गुरुम् । ततस्तु प्रजपेद् धीमान् यावद् वर्षं समापयेत् ।।५

समाप्ते वर्षमेकं हि बाह्य-पूजां समाचरेत् ।।६

नानालङ्कार-सुभगैर्नाना-वस्त्रैश्च शोभनैः । सपत्नीकं गुरुं भक्त्या पूजयेद् विधि-बोधितः ।।७

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपाद्यैः पूजयेत् प्रिये ! तदा सिद्धो भवेद् देवि ! नान्यथा वचनं मम ।

शिव-सिंहो गुरुर्देवि ! तत्-पत्नी शिव-सिंहिनी ।।८

मन से गुरु को गन्ध, पुष्पादि अर्पित कर बुद्धिमान् एक वर्ष तक जप करे । एक वर्ष पूर्ण होने पर बाह्य पूजा करे । विविध प्रकार के सुन्दर आभूषणों और विभिन्न प्रकार के सुन्दर वस्त्रों द्वारा भक्तिपूर्वक पत्नी-सहित गुरु की पूजा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, आदि से करे । तब हे देवि ! साधक सिद्ध होता है, इसमें सन्देह नहीं । शिव-सिंह गुरु हैं और उनकी पत्नी शिव-सिंहिनी ।।५-८

।। श्रीदेव्युवाच ।।

भो देव, तपसां नाथ ! एकं पृच्छामि तद् वद । यदि नो कथ्यते देव ! विमुञ्चामि तदा तनुम् ।।९

सहस्रारे महा-पद्मे सदा चाधोमुखे प्रभो ! गुरोः स्थितिं कथं देव ! सततं वद निश्चितम् ।

अधोमुखं महा-पद्मं न स्थितिश्च कदाचन ।।१०

श्री देवी ने कहा—हे तपस्वियों के स्वामी, भगवन् ! एक बात पूछती हूँ, उसे बताइए । यदि नहीं बताएँगे, तो देह त्याग दूंगी । हे प्रभो ! सहस्रार का कमल तो सदा अधो-मुख रहता है, उसमें गुरु की स्थिति सदैव कैसे रह सकती है ? अधो-मुख महा-पद्म में स्थित रहना कभी सम्भव नहीं है ।।६-१०

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

प्राण-प्रिये, महेशानि ! यदेतत् प्रश्न-पूर्वकम् । महा-योग-मयं प्रश्नं सारात् सारं परात्परम् ।।११
यन्न कस्यचिदाख्यातमधुना निगदामि ते । प्रौढ़े ! त्वं चञ्चलापाङ्गि ! सा त्वं तां प्रौढ़तां त्यज ।।१२

श्री महा-देव ने कहा—हे प्राण-प्रिये, महेशानि ! यह तुम्हारा प्रश्न अति श्रेष्ठ, सार-पूर्ण और योगात्मक है । मैंने किसी को जो नहीं बताया है, वह तुम्हें बताता हूँ ।।११-१२

सहस्रारं महा-पद्मं सहस्र-दल-संयुतम् । सदा शिव-पुरं तत्तु नित्यानन्द-मयं सदा ।।१३
निर्विकारं निरीहं च सुव्यक्तं पद्म-मोहनम् । नाना-गन्ध-युतं पद्मं सहजानन्द-मन्दिरम् ।
वीज-कोषस्य चार्वङ्गि ! रहस्यं शृणु पार्वति ।।१४

सहस्रार का महा-कमल सहस्र दलों से युक्त है । वह शिव का स्थान है, सदा नित्यानन्द-मय रहता है । वह मन-मोहक पद्म निर्विकार, निरीह, भले प्रकार स्पष्ट, विविध प्रकार की सुगन्धों से युक्त और सहज आनन्द का स्थान है । हे सुन्दरी पार्वति ! उसके बीज-कोष का रहस्य सुनो ।।१३-१४

विराटं विविधं रम्यं नाना-शक्ति-युतं सदा । सर्व - देव - मयं देवि ! सर्वागम - मयं सदा ।
सर्व-शास्त्र-मयं भद्रे ! वीज-कोषं न चान्यथा । सदा चाधोमुखं पद्मं वीजमूर्ध्व-मुखं सदा ।।१५

हे भद्रे ! उसका बीज-कोष विशाल है, सुन्दर है और सदा विविध प्रकार की शक्तियों से युक्त रहता है । सभी देवों, सभी तन्त्रों और सभी शास्त्रों से वह समन्वित रहता है । पद्म तो अधोमुख रहता है किन्तु उसका बीज-कोष सदा ऊर्ध्व-मुख रहता है ।।१५

त्रिकोणाकार-रूपेण कुण्डली-संयुतेन च । ऊर्ध्व-मुखानि वीजानि वीज-कोषं वरानने !
सार्द्ध-त्रिवलयाकारं वीज-कोषं सुधा-मयम् । सुधा-रस-समाकारं कोटि-चन्द्र-सम-प्रभम् ।
तत्रोपरि महेशानि ! भावयेद् गुरु-दैवतम् । यस्यास्ते वाम-पार्श्वे तु पत्नी प्रकृति-रूपिणी ।।१६

अमृत-मय वीज-कोष साढ़े-तीन फेरोंवाला है । उसके बीज ऊर्ध्व-मुखवाले हैं और त्रिकोणाकार-रूप-में कुण्डलिनी-शक्ति से युक्त हैं । अमृत-सागर-वत् उसका आकार है और करोड़ों चन्द्रमा के समान उसकी कान्ति है । हे महेशानि ! उस बीज-कोष के ऊपर गुरु-देव का ध्यान करना चाहिये । उनके बाईं ओर प्रकृति-रूपिणी उनकी पत्नी रहती हैं ।।१६

अनेन सहसा देवि ! सहस्रारस्य गह्वरे । भावयेत् पर - यत्नेन कोषमूर्ध्व - मुखं सदा ।।१७
कोषस्तु चञ्चलापाङ्गि ! स्वयं प्रकृति-मूर्तिमान् । पद्मं चाधोमुखं देवि ! वीजमूर्ध्वं न चान्यथा ।।१८

इस प्रकार हे देवि ! सहस्रार के गह्वर में अति यत्न-पूर्वक सदा ऊर्ध्व-मुख कोष की भावना करनी चाहिये । हे चञ्चल-नेत्रे ! यह कोष प्रकृति-स्वरूप है । हे देवि ! कमल तो अधोमुख है किन्तु बीज-कोष ऊर्ध्व-मुख है, इसमें सन्देह नहीं ।।१७-१८।।

एतत् ते कथितं तत्त्वं सहस्रारस्य-लक्षणम् । सर्व-योग-मयं तत्त्वं सदा मम हृदि स्थितम् ।
न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।।१९

सहस्रार का यह तत्त्व तुमसे कहा है, जो सभी योगों का सार है और सदा मेरे हृदय में रहता है । इसे किसी को न बताना चाहिये । अतः हे महेशानि ! इसे यत्न-पूर्वक गुप्त रखे ।।१९।।

अतएव महेशानि ! गोपनं कुरु यत्नतः । यदेतत् कथितं तत्त्वं तन्त्राणां सारमुत्तमम् ।
योगानां सारमेतत् तु साधनानां तथैव च ।।२०
एतत् तत्त्वमविज्ञाय पुरश्चर्यां करोति यः । सर्वं हि विफलं तस्य कोटि-लक्षं जपेद् यदि ।।२१

तन्त्रों का सार-रूप यह जो तत्त्व बताया है, यह सभी योगों और साधनाओं का सार है । इस तत्त्व को जाने बिना जो पुरश्चरण करता है, वह भले करोड़ लाख जप कर ले, वह सब उसका व्यर्थ होता है ।।२०-२१।।

यद्-गृहे विद्यते देवि ! एतत् तन्त्रं सुधा-मयम् । किं तस्य ध्यान-पूजायां पुरश्चार-शतैरपि ।।२२
नित्यं च पूजयेत् तन्त्रं सुगन्धि-पुष्प-संयुतम् । अष्ट-गन्ध-युतं तन्त्रं यद्-गृहे विद्यते सदा ।
तद्-गृहं चञ्चलापाङ्गि ! कैलास-सदृशं सदा ।।२३

हे देवि ! यह अमृत-मय तन्त्र जिसके घर में है, उसे ध्यान, पूजा और सैकड़ों पुरश्चरण करने की आवश्यकता नहीं होती । नित्य इस तन्त्र की पूजा सुगन्धित पुष्पों से करे । अष्ट-गन्ध से युक्त यह तन्त्र जिस घर में रहता है, हे चञ्चल - नेत्रे ! वह कैलास के समान गौरव-पूर्ण होता है ।।२२-२३।।

नाना-तीर्थ-मयं तन्त्रं नाना-पीठ-मयं सदा । एतत् तन्त्रं महेशानि ! स्वयं प्रकृतिरीश्वरी ।।२४
दिवसे दिवसे भक्त्या यः स्पृशेत् तन्त्रमुत्तमम् । स पूतः सर्व-पापेभ्यः सदा-शिव-मयः सदा ।।२५

यह तन्त्र विविध तीर्थों, विविध शक्ति-पीठों से सदा युक्त है । हे महेशानि ! यह तन्त्र साक्षात् भगवती प्रकृति ही है । प्रति-दिन भक्ति-पूर्वक जो इस तन्त्र को छूता है, वह सभी पापों से छूट कर पवित्र होकर सदा-शिव-मय हो जाता है ।।२४-२५।।

अनेन विधिना देवि ! पुरश्चर्यां करोति यः । स सिद्धश्चञ्चलापाङ्गि ! अन्यत् तु वन-रोदनम् ।।२६

हे देवि ! इस विधि से जो पुरश्चरण करता है, वह सिद्ध होता है । अन्य प्रकार से करना तो वन में रोने के समान निष्फल ही होता है ।।२६।।

।। इति श्रीपुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-संवादे अष्टमः पटलः ।।

नवमः पटलः

सहस्रार-पद्मस्य गुह्य-तत्त्वम्

(सहस्रार-पद्म के गुह्य तत्त्व का निरूपण)

।। श्रीदेव्युवाच ।।

देव-पूज्य, महा-देव ! तत्त्वं परम-दुर्लभम् । सहस्रारस्य यत् तत्त्वमति-गुह्यं वद प्रभो ।।१

श्री देवी ने कहा—हे देवों के पूज्य, महा-देव ! सहस्रार का जो तत्त्व अति गोपनीय है, उसे बताइये ।।१।।

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

शृणु तत्त्वं महेशानि ! यद् गुह्यं हृदये मम । तत् तेऽद्याहं प्रवक्ष्यामि यद् गुह्यं योग-संग्रहम् ।।२

श्री महा-देव ने कहा—हे महेशानि ! उस तत्त्व को सुनो, जो मेरे हृदय में छिपा हुआ है । आज मैं तुम्हें उस योग के सार को बताऊँगा, जो अति गोपनीय है ।।२।।

सहस्रारं महा-पद्मं ब्रह्म-रन्ध्रे स्थितं सदा । यस्य पत्रं महेशानि ! सर्व-शक्ति-मयं सदा ।
शुक्लं रक्तं तथा पोतं कृष्णं हरितमेव च । विचित्रं चित्र-रूपेण नाना-रूपेण शोभितम् ।।३
शुक्लं कृष्णं क्षणात् पीतं क्षणाद् रक्तं शुचि-स्मिते ! कस्मिन् क्षणे महेशानि ! हरितं वर्णमुत्तमम् ।
चित्र-रूपं च चार्वङ्गि ! धत्ते कस्मिन् क्षणे प्रिये ! एवं नाना-विधै रूपैस्तत्-पद्मं शोभितं सदा ।।४

सहस्रार का महा-पद्म सदा ब्रह्म - रन्ध्र में रहता है, जिसकी पंखुड़ियाँ, हे महेशानि ! सदा सभी शक्तियों से युक्त रहती हैं । श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण, हरित, चित्र-विचित्र, विविध प्रकार के रूपों से वे सुशोभित हैं । हे पवित्र मुस्कानवाली, महेशानि ! कभी तो वे श्वेत या कृष्ण वर्ण की होती हैं, तो कभी क्षण भर में वे उत्तम हरे रंग की होती हैं, तो किसी क्षण में, हे प्रिये ! वे अनेक रंग धारण कर लेती हैं । इस प्रकार वह कमल विविध प्रकार के रूप से सदा शोभायमान रहता है ।।३-४।।

भावयेत् परया भक्त्या गुरोः स्थानं परात्परम् । शिव-सिंहं गुरुं यत्र ध्यायेत् साधक-सत्तमः ।
यत्रास्ते परमं देवि ! मनोरूपी गुरुर्मम । मनसः सङ्गिनी साक्षादुन्मनी परमेश्वरी ।
उन्मनी या महेशानि! भव-बन्ध-निकृन्तनी । सा स्त्री-रूपेण चार्वङ्गि ! सर्वं व्याप्य तु तिष्ठति ।।५

परम भक्ति के साथ गुरु के श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ उस स्थान का ध्यान करना चाहिए, जहाँ उत्तम साधक शिव-सिंह गुरु का ध्यान करता है । हे देवि ! वहीं मेरा 'मन'—रूपी परम गुरु है और मन की सङ्गिनी साक्षाद् परमेश्वरी-स्वरूपा 'उन्मनी' है । हे महेशानि ! वह 'उन्मनी', जो संसार के पाशों को काटनेवाली है । हे सुन्दरि ! वह स्त्री-रूप से सभी को व्याप्त करके रहती है ।।५।।

गुरुर्नास्ति महेशानि ! गुरु-पत्नी च नास्ति मे । माला मे चञ्चलापाङ्गि ! गुरुः पर-गुरुः प्रिये !
उन्मनी गुरु-पत्नी मे, नास्ति मे गुरु-सन्ततिः । शिव-सिंहो मनो मे स्यादुन्मनी शिव-सिंहिनी ।।६
योग-काले महेशानि ! विभाव्य शिव-सिंहिनीम् । तुरीय-कूटमुच्चार्यं आत्मा मनसि यो जपेत् ।।
आत्मा जीवो वायु-रूपी शुद्ध-सत्वात्मकः सदा । गुरोर्जीवस्य चैकत्वं यदा याति वरानने !
तदैव सहसा जप्त्वा प्राप्नुयात् सिद्धिमुत्तमाम् ।।७

हे महेशानि ! मेरे गुरु नहीं हैं और न मेरी गुरु - पत्नी हैं । हे चञ्चल - नेत्रे ! 'माला' ही मेरी गुरु है, परम गुरु है । 'उन्मनी' ही मेरी गुरु-पत्नी है । मेरे गुरु-सन्तान नहीं हैं । 'मन' ही मेरा शिव-सिंह है और 'उन्मनी' ही शिव-सिंहिनी है । हे महेशानि ! योग-काल में शिव-सिंहिनी का ध्यान कर तुरीय-कूट का उच्चारण कर आत्मा मन में जप करती है क्योंकि आत्मा ही जीव है, जो सदा वायु-रूपी शुद्ध सत्वात्मक है । हे सुमुखि ! जब गुरु और जीव का एकत्व होता है, तब जप करने से अचानक ही उत्तम सिद्धि मिल जाती है ।।६-७।।

भावयेत् परया भक्त्या वराटोपरि पार्वति ! शुद्ध-काञ्चन-वर्णाभं वराटं वीर-वन्दिते !
सर्व-शक्ति-मयं देवि ! वराटं दृढ़मुत्तमम् । वराटं चञ्चलापाङ्गि ! महा-कुण्डलिनी-युतम् ।।
पञ्चाशद्-वर्ण-रूपेण तत्रास्ते मूर्तिमान् स्वयम् । वराटस्यैव यद्-वीजं तदेव चाक्षरात्मकम् ।।
तत्रास्ते सततं देवि ! गुरुर्मे परमेश्वरि ।।८

हे पार्वति ! 'वराट्' के ऊपर परम भक्ति-पूर्वक ध्यान करे । हे वीर-वन्दिते ! शुद्ध स्वर्ण की आभावाला 'वराट्' सभी शक्तियों से युक्त अति सुदृढ़ है । हे चञ्चल-नेत्रे ! 'वराट्' महा-कुण्डलिनी से युक्त है । पचास वर्णों के स्वरूप में वह स्वयं मूर्तिमान है । 'वराट्' का ही बीज अक्षरात्मक है । वहीं हे देवि, परमेश्वरि ! मेरे गुरु हैं ।।८।।

सदा चाधोमुखं पद्मं सदा कुण्डलिनी-युतम् । तड़ित्-कोटि-निभाकारं किञ्जल्कानि च सन्ति च ।
किञ्जल्कानि च चार्वङ्गि ! कोटि - विद्युल्लताकृतिः ।।
तद्-बाह्ये चञ्चलापाङ्गि ! षोडशं पत्रमुत्तमम् । श्रीविद्या षोडशी यत्र मोदते कुण्डली सह ।
तद् - बाह्ये बहु - पत्राणि तन्त्र-मन्त्र-युतानि च ।। ९

पद्म सदा अधोमुख रहता है, सदा कुण्डलिनी से युक्त रहता है और उसका वीज-कोष करोड़ों विद्युल्लताओं के समान कान्तिमान रहता है । उसके बाहर, हे चञ्चल-नेत्रे ! सोलह उत्तम पंखुड़ियाँ हैं, जहाँ षोडशी श्रीविद्या कुण्डलिनी के साथ आनन्द-मग्न रहती हैं । उसके बाहर तन्त्र-मन्त्र-युक्त बहुत सी सिद्धियाँ हैं ।।९।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

देव-देव, महा-देव ! सन्देहो जायते मम । छिन्धि छिन्धि योग-सिद्ध ! सन्देहं मम साम्प्रतम् ।।
अधोमुखे महा-पद्मे गुरोः स्थितिः कथं वद । वराट-सहितं पद्मं सदा चाधोमुख-स्थितम् ।।
किमाकारो महा-बाहो ! बीज-कोषस्य तद् वद ।।१०

श्री देवी ने कहा—हे देवेश्वर महा-देव ! मुझे सन्देह होता है। हे योग-सिद्ध ! मेरे सन्देह को दूर करें। अधो-मुख महा-पद्म में गुरु की स्थिति कैसे है; 'वराट्' के साथ पद्म तो सदा अधोमुख रहता है; हे महाबाहो ! बीज-कोष का आकार कैसा है, यह बताइये ।।१०

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

साधु पृष्टं त्वया भद्रे ! योग-सारं मम प्रिये ! अत्यन्त-गुह्यं चार्वङ्गि ! निगदामि शृणु प्रिये ।।११

श्रीमहा-देव ने कहा—हे प्रिये, भद्रे ! तुमने अच्छा पूछा। हे सुन्दरि ! योग का तत्त्व बड़ा गुप्त है, उसे कहता हूँ, सुनो ।।११।।

पद्मस्य चित्रिणी नाड़ी स्वयं प्रकृति-रूपिणी । मूलाधारान्महेशानि ! उत्थिता चित्रिणी तु या ।।१२
चक्र-सङ्घं महेशानि ! विभिद्य चोत्थिता त्वया । पङ्कजस्य महेशानि ! मृणालं समुदाहृतम् ।।
या सा तु चित्रिणी-रूपा कुण्डली सा प्रकीर्तिता । सैव स्याच्चञ्चलापाङ्गि ! परमाश्चर्य-कुण्डली ।
आश्चर्य - कुण्डली भूत्वा सार्द्ध-त्रिवलयाकृतिः ।।१३
पद्म-गर्भे महेशानि ! तिष्ठन्ती सततं प्रिये ! यत्रास्ते चित्रिणी-नाड्या अग्र-स्थानं परं पदम् ।।१४
तस्यास्तु चित्रिणी-नाड्या अग्रमूर्ध्व-मुखं सदा । बीज-कोषं तदेव स्यादूर्ध्व-शक्ति-मयं यतः ।
अधः-शक्ति-युतं पद्मम्लानं परमेश्वरि ।।१५

पद्म की चित्रिणी नाड़ी स्वयं प्रकृति-स्वरूपा है। हे महेशानि ! मूलाधार से जो चित्रिणी नाड़ी उठती है, वह चक्र-समूहों का भेदन कर तुम्हारे ही द्वारा ऊपर उठती है। पद्म का वही मृणाल है। वही चित्रिणी-रूपा कुण्डलिनी कही गई है। वही हे चञ्चल-नेत्रे ! परम आश्चर्य-मयी कुण्डलिनी है। वह साढ़े तीन फेरे-वाली होकर पद्म के गर्भ-स्थान में सदा रहती है। चित्रिणी नाड़ी का अगला अग्र-भाग सदा ऊर्ध्व-मुख रहता है, वह श्रेष्ठ स्थान है। वहीं बीज-कोष है, जो ऊर्ध्व - शक्ति-मय है। हे परमेश्वरि ! अधः-शक्ति-मय पद्म सदा उज्ज्वल रहता है ।।१२-१५।।

ऊर्ध्व-शक्ति-युतं देवि ! वीज-कोषं न चान्यथा । कुण्डली-ग्रन्थि-संयुक्तमतश्चाम्लान-रूपिणम् ।।
सदा त्रिकोण-संयुक्तं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् । अम्लान-पङ्कजं देवि ! अतएव वरानने ।।१६
सदा शिव-पुरं तत् तु नित्यानन्द-मयं यतः । नित्यं कुण्डलिनी यत्र नित्या तु परिगीयते ।।१७
यत्रास्ते देवता-ध्यानं गुरोर्ध्यानं तु कामिनि ! अतएव महेशानि ! आनन्दं परिगीयते ।
तदेव ब्रह्मणो रूपं भवानी-मूर्ति-सद् यतः ।।१८

हे देवि ! बीज-कोष ऊर्ध्व-शक्ति - मय है। वह कुण्डली - ग्रन्थि से युक्त है, अतः उज्ज्वल स्वरूपवाला है। वह त्रिकोण-संयुक्त अर्थात् ब्रह्म - विष्णु-शिवात्मक है। अतः हे देवि ! वह उज्ज्वल कमल है। वह सदा-शिव का स्थान नित्यानन्द-मय है, जहाँ कुण्डलिनी सदा गान किया करती है। वहीं देवता का और गुरु का ध्यान किया जाता है, अतः आनन्द कहा जाता है। वही ब्रह्म का रूप है क्योंकि भगवती-स्वरूप है ।।१६-१८।।

भकारस्तु परं-ब्रह्म सदा-शिव-मयं प्रिये ! या वाणी परमा नित्या कुण्डली पर-कुण्डली ।।१९
अतएव महेशानि ! भवानीति प्रगीयते ।।२०।।
भकारः परमेशानि ! निर्गुणः परमः शिवः । वाणीति परमा नित्या नाना-विद्या-मयो सदा ।।२१
जड़श्च सततं देवि ! भकारः परमः शिवः । वाणीं विना वरारोहे ! भकारः प्रेत-वत् सदा ।।२२
त्रि-गुणं कुण्डलाकारं सर्पाकारं वरानने ! यदेतच्चञ्चलापाङ्गि ! वराटं चित्रिणी-मुखम् ।।
अतएव महेशानि ! बीजमूर्ध्व - मुखं सदा । अधोमुखं महा-पद्मं कुण्डली यस्य गह्वरे ।।
चित्रिणी कुण्डली-रूपं भूत्वा वेष्टन - संयुतम् । अतएव महेशानि ! वराटोपरि भावयेत् ।।२३

हे प्रिये ! भकार सदा शिव-मय पर-ब्रह्म है । जो परमा नित्या वाणी है, वह श्रेष्ठ कुण्डलिनी है । इसी से उसे 'भवानी' कहते हैं । हे परमेशानि ! भकार निर्गुण परम शिव है । वाणी परमा नित्या और विविध विद्याओं से सदा परिपूर्ण है । हे देवि ! परम शिव भकार सदैव जड़ ही है । हे सुन्दरि ! वाणी के बिना भकार सदा प्रेत के ही समान है । हे वरानने ! त्रिगुणात्मक, कुण्डलाकार, सर्प के आकारवाला जो चित्रिणी का मुख है, वही 'वराट्' है । अतएव हे महेशानि ! बीज सदा ऊर्ध्व-मुख होता है । महा-पद्म अधोमुख है, जिसके गह्वर में कुण्डलिनी रहती है । चित्रिणी कुण्डलिनी - रूपा होकर वेष्टन-युक्त रहती है । हे महेशानि ! 'वराट्' के ऊपर उसका ध्यान करना चाहिए ।।१९-२३।।

अत ऊर्ध्व-मुखं देवि ! ऊर्ध्व-शक्ति-समन्वितम् । वराटं सुन्दरं स्वच्छं सदा चोर्ध्व-मुखं स्मृतम् ।।२४
तत्रोपरि महेशानि ! भावयेद् गुरु-दैवतम् । सन्देहो नैव कर्त्तव्यो हृदयोपरि भावयेत् ।।२५

हे देवि ! सुन्दर और स्वच्छ 'वराट्' ऊर्ध्व-मुख है और ऊर्ध्व-शक्ति से युक्त है । हे महेशानि ! उसी के ऊपर गुरु-देव का ध्यान करना चाहिये । सन्देह नहीं करना चाहिये । हृदय के ऊपर ध्यान करना चाहिए ।।२४-२५।।

एतद्-गुह्यं महेशानि ! न प्रकाश्यं कदाचन । एतत् ते कथितं देवि ! सारात् सारं परात्परम् ।
सारं च सर्व-योगानामप्रकाश्यमतः परम् ।।२६।।
रहस्यमेतच्चार्वङ्गि ! अज्ञात्वा यो जपेन्नरः । सर्वं तस्य वृथा देवि ! अरण्ये रोदनं यथा ।।२७
एतद् रहस्यं चार्वङ्गि ! यो जानाति द्विजोत्तमः । शरीरो दिव्य-रूपी च मम तुल्यो न संशयः ।।२८
गृह्णीयाद् यो महा-विद्यां तन्मुखाद् वर-वर्णिनि ! स सिद्धः स गणः सोऽपि मम तुल्यश्च पार्वति ।।२९

हे महेशानि ! इस गुप्त बात को कभी प्रकाशित न करना चाहिए । यह श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ सार, हे देवि ! तुमसे कहा है । सभी योगों का यह सार है । अतः अप्रकाश्य है । इस रहस्य को जाने बिना जो मनुष्य जप करता है, उसका सब कुछ व्यर्थ होता है, जैसे वन में रोना । हे सुन्दरि ! इस रहस्य को जो उत्तम द्विज जानता है, उसका शरीर दिव्य-रूप हो जाता है और वह मेरे समान होता है, इसमें सन्देह नहीं । उसके मुख से जो महा-विद्या को ग्रहण करता है, हे सुन्दर वर्णवाली पार्वति ! वह सिद्ध होता है, गण-स्वरूप होता है और मेरे समान तेजस्वी बन जाता है ।।२६-२९।।

।। इति पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-संवादे नवमः पटलः ।।

दशमः पटलः

दीक्षा-वर्णन-प्रसंगे पञ्चमी-माहात्म्यम्

(दीक्षा-वर्णन के प्रसङ्ग में पञ्चमी का महत्त्व)

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

अज्ञात्वा पद्म-तत्त्वं च विद्यां गृह्णाति यो नरः । सर्व-धर्मं परित्यज्य पशु-योनिमवाप्नुयात् ।।१

श्रीमहा-देव ने कहा—पद्म-तत्त्व को न जानकर जो मनुष्य विद्या (मन्त्र) को ग्रहण करता है, वह सभी धर्मों से च्युत होकर पशु-योनि को प्राप्त करता है ।।१।।

एतत् तत्त्व-विदं लब्ध्वा न त्यक्ष्यामि कदाचन । न तिथिर्न च भद्रा च गणनीया च कुत्रचित् ।।
न मास-शोधनं देवि ! न कालादि-विशोधनम् । यदि भाग्य - वशाद् देवि ! एवं गुरुमुपासते ।
तदैव सहसा देवि ! गृह्णीयान्न विचारयेत् ।।२।।

इस तत्त्व के ज्ञाता को पाकर मैं उसका कभी त्याग नहीं करता । हे देवि ! ऐसे गुरुदेव को भाग्य-वश पाकर यदि उसकी उपासना की जाती है, तो न तिथि का और न ही काल आदि की विशुद्धता देखी जाती है । उस समय अचानक ही मन्त्र ग्रहण कर लेना चाहिये, कोई विचार न करना चाहिए ।।२।।

तत्र गुह्यं महेशानि ! तिथि-तत्त्वं शृणु प्रिये ! गुर्वनुग्रह - मात्रेण दीक्षां कुर्यादशङ्कितः ।।
त्यक्त्वा तिथिं शारदीं च नाम्ना श्रीपञ्चमीं पराम् ।।३।।

हे प्रिये, महेशानि ! इस सम्बन्ध में तिथि का रहस्य सुनो । गुरुदेव की कृपा होते ही, बिना किसी सन्देह के दीक्षा ले लेनी चाहिये । केवल 'श्रीपञ्चमी' नाम से विख्यात श्रेष्ठ शारदीय पञ्चमी तिथि को छोड़कर, जिसका अपना विशेष महत्त्व है ।।३।।

माघ-मासस्य चार्वङ्गि ! शुक्ल-पक्षे च पञ्चमी । सा हि श्री-पञ्चमीत्युक्ता सर्व-देव-नमस्कृता ।।
अतएव महेशानि ! कलि-काले च भारते ! दीक्षा - व्याख्या वरारोहे ! कर्त्तव्या न कदाचन ।।४

हे सुन्दरि ! माघ मास की, शुक्ल पक्ष में जो पञ्चमी तिथि होती है, वही 'श्री-पञ्चमी' कही गई है, जो सभी देवों से वन्दिता है । अतएव हे महेशानि ! कलियुग में भारतवर्ष में दीक्षा की कभी व्याख्या न करनी चाहिये ।।४।।

तस्यां तिथौ महेशानि ! शारदा प्रोद्गता यतः । गत्वा मोक्ष-गृहं देवि ! त्रिपुरायाः शुचि-स्मिते ।।
नाना-विद्यां च देवेशि ! नाना तन्त्रे च सुन्दरि ! सर्व-मोक्ष-गृहं गत्वा शारदां पूज्यते यतः ।।
नाना-सुखमवाप्नोति त्रिपुरा-पद-सन्निधौ ।।५।।

हे महेशानि ! उस तिथि में क्योंकि सरस्वती का प्रादुर्भाव होता है, अतः हे पवित्र मुस्कानवाली देवेशि ! भगवती त्रिपुरा की विविध प्रकार की विद्यायें और विविध प्रकार की तन्त्र-शक्तियाँ स्वर्ग-लोक में जाकर सरस्वती की पूजा करती हैं क्योंकि भगवती त्रिपुरा के चरणों के निकट उन्हें विविध प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं ।।५।।

तानि सर्वाणि त्रिपुरा दृष्ट्वा परम - हर्षिता । तुरीय - बीजैश्चार्वङ्गि ! करोति सेवनं सदा ।।
तुरीयं यत् तु चार्वङ्गि ! अमृतार्णव-पूरितम् । शिव-शक्ति - मयं तत् तु सुन्दर्याः परमं पदम् ।।
सर्वासां मन्त्र-विद्यानां विश्रामं तद्-दिनं भवेत् । अतएव महेशानि ! दीक्षा-व्याख्यां विवर्जयेत् ।।६
पंचम्यां चञ्चलापाङ्गि ! यत्नतो द्विज-सत्तमः । तुरीय - कूटमुच्चार्य कृत्वा सम्पुट-वत् प्रिये ।।
अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा विद्यां चामृत-संज्ञिताम् । मन्त्रं वा चञ्चलापाङ्गि ! अमृतार्णव-शायिनम् ।
कृत्वा प्रयत्नतो देवि । यथाऽनुष्ठानमाचरेत् ।।७।।

उन सबको देख कर भगवती त्रिपुरा प्रसन्न होती हैं । हे सुन्दरि ! वे तुरीय वीजों द्वारा सदा उनकी सेवा करती हैं । तुरीय वह है, जो अमृत-सागर से परिपूर्ण है, शिव और शक्ति से युक्त है और भगवती सुन्दरी का श्रेष्ठ-तम स्थान है । उस दिन सभी मन्त्र-विद्याओं के विश्राम का समय होता है । अतएव हे महेशानि ! उस दिन दीक्षा की व्याख्या मना है । हे चञ्चल-नेत्रे ! पञ्चमी के दिन श्रेष्ठ द्विज को प्रयत्न करके तुरीय कूट का उच्चारण कर सम्पुट के समान कर अमृत-विद्या का १०८ बार जप करना चाहिए । हे देवि ! अथवा मन्त्र को अमृत-शायी बनाकर प्रयत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए ।।६-७।।

वरं पूजा न कर्तव्या कवचं न पठेद् वरम् । अमृतेन पुटीकृत्य अष्टोत्तर - शतं जपेत् ।।
अति-क्षोभाच्च चार्वङ्गि ! दशधा प्रजपेत् सुधीः ।।८।।
अन्यथा चञ्चलापाङ्गि ! पुष्प-धन्वा रतिस्तथा । हरन्ति सर्व-तेजांसि दीक्षायां च जपेन किम् ।।९

भले ही पूजा न करे और न कवच-स्तोत्र का पाठ करे, अपितु अमृत-वीज से पुटित कर १०८ बार जप करे । हे सुन्दरि ! अति क्षोभ हो, तो दस बार अर्थात् १०८० बार जप करे । अन्यथा कामदेव और रति सारी शक्ति का हरण कर लेते हैं । तब दीक्षा या जप का कोई फल नहीं होता ।।८-९।।

तस्मात् प्रयत्नतो देवि ! श्री-पञ्चम्यां सिते दिने । वर्जयेन्मति-मान् दीक्षां नान्यथा वचनं मम ।।१०
करोति कारयेद् वापि मम हत्यां करोति सः । एतत् तत्त्वं न जानाति तत् कथं गुरुतां व्रजेत् ।।११
शिष्यता वा कथं देवि ! शिष्यस्य भवति प्रिये ! श्री-पञ्चम्यां महेशानि ! यदि विद्यामुपागतः ।।
सर्वे देवाः सदाराश्च शापं दत्वा व्रजेत् पुरम् ! अतएव महेशानि ! उभयोर्नरकं भवेत् ।।१२

अतः हे देवि ! शुक्ल पक्ष की पञ्चमी के दिन दीक्षा की विधि न करे । जो दीक्षा करता है या कराता है, वह मेरी हत्या का दोषी होता है । जो इस तत्त्व को नहीं जानता, वह कैसे गुरु बन सकता है ? हे देवि ! अथवा कोई शिष्य बनने के योग्य ही कैसे हो सकता है ? श्री-पञ्चमी के दिन, हे महेशानि ! यदि कोई विद्या के पास आता है, तो सभी देव अपनी शक्तियों सहित उसे शाप देकर अपने लोक को चले जाते हैं । अतएव दीक्षा करने एवं करानेवाले—दोनों ही नरक को प्राप्त करते हैं ।।१०-१२।।

रहस्यं शृणु चार्वङ्गि ! अति-गुप्तं सु-दुर्लभम् । सुषुम्ना-वर्त्म-मध्यस्थं यद् दृष्टं वीर-वन्दितै ।।१३
आनाय स्व-गृहं देवि ! स-पत्नीकं प्रयत्नतः । नाना-गन्ध-युतैस्तैलैर्माजयेदङ्ग - यष्टिकाम् ।।

स्नापयेद् विविधैः शुद्धैरुदकैः सुर-पूजिते ! दिव्य-वस्त्रेण तद्-गात्रं सम्प्रोञ्छ्य वर-वर्णिनि !
पूजयेद् विविधैः पुष्पैर्गन्धैश्च विविधैस्तथा । धूप - दीपैस्तथा पेयैस्ताम्बूलाद्यैः सु-वासितैः ।
प्रकृत्या सह चार्वङ्गि ! पूजयेद् गुरु-दैवतम् ।।१४।।
गुरोरङ्गं महेशानि ! चन्दनैः परिलेपयेत् । गुरोः कण्ठे महेशानि ! मालां दद्यात् सुलक्षणाम् ।।१५
नानालङ्कार-सुभगैः पूजयेद् गुरु-दैवतम् । पट्ट - वस्त्रादिभिर्देवि ! रत्न-रूप्यादि-निर्मितैः ।
तत्-पत्नीं पूजयेद् भक्त्या साक्षात् तां जगदीश्वरीम् ।।१६।।
शङ्ख-कङ्कण - केयूर - नूपुरादि - विलक्षणैः । हार - रत्न-मयैर्देवि ! तत्-पत्नीं पूजयेत् प्रिये ।।१७

हे सुन्दरि ! रहस्य को सुनो । यह अति गुप्त है और बहुत दुर्लभ है । यह सुषुम्ना-मार्ग के मध्य में स्थित दिखाई देता है । हे देवि ! अपने गुरुदेव को प्रयत्न-पूर्वक उनकी पत्नी के सहित आमन्त्रित करे । विविध प्रकार की सुगन्धों से युक्त तैल उनके शरीर में लगाकर उन्हें विविध प्रकार के शुद्ध जल से स्नान कराये । हे देव - पूजिते ! दिव्य वस्त्रों से उनके शरीर को पोंछकर विविध प्रकार के पुष्पों और विविध प्रकार के चन्दनों तथा धूप, दीप, पेय पदार्थों एवं सुगन्धित ताम्बूलों आदि से हे सुन्दरि ! प्रकृति (पत्नी) के साथ गुरु-देव का पूजन करे । गुरु के अङ्गों में हे महेशानि ! चन्दन का लेप करे, उनके कण्ठ में सुन्दर माला पहनाये । विविध प्रकार के सुन्दर आभूषणों से गुरुदेव की पूजा करे । हे देवि ! रेशमी वस्त्रों, रत्नों और चाँदी के बने आभूषणों से उनकी पत्नी की पूजा साक्षात् जगदीश्वरी समझते हुये करे । हे प्रिये ! शङ्ख, कङ्गन, केयूर, नूपुर, रत्न - जटित हार आदि से उनकी पत्नी की पूजा करे ।।१३-१७।।

तस्यास्तु वामतस्तस्य वामांगुष्ठे शुचिस्मिते ! खं वीजं तु प्रविलिख्य प्रदद्याद् वै पुष्पाञ्जलिम् ।।१८
श्रीगुरोर्मन्त्रमुच्चार्य भक्त्या श्रीगुरवे ततः । मन्त्रं श्रीगुरु-पत्नीं च उच्चार्य नग-नन्दिनि !
गुरु-पत्न्यै महेशानि ! दद्यादुच्चार्य पार्वति ।।१९।।
तन्मन्त्रं शृणु चार्वङ्गि ! अति-गुह्यं परात्परम् । काम-बीजं समुच्चार्य तस्यानुष्ठानमाचरेत् ।
पुनः कामं समुद्धृत्य मन्त्रमेतदुदारितम् ।।२०।।

हे पवित्र मुस्कानवाली ! गुरु-पत्नी की बाईं ओर उनके बाँएँ अँगूठे में 'खं' बीज लिखकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । तब श्रीगुरु के मन्त्र का उच्चारण कर श्री गुरुदेव को पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । हे महेश्वरि ! उस मन्त्र को सुनो, जो अत्यन्त गोप्य और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है । काम-वीज (क्लीं) का उच्चारण कर उनका अनुष्ठान करे । पुनः काम-वीज (क्लीं) का उद्धार कर इस मन्त्र को कहे ।।१८-२०।।

सपत्नीकं गुरुं देवं पूजयेद् यस्तु साधकः । अनेन विधिना देवि ! सम्पूज्य गुरु-दैवतम् ।।
सपत्नीकं पूजयित्वा सहस्र-दल - पङ्कजे । भावयेद् गुरु - देवं च वीज - कोषोपरि प्रिये ।।२१
भावयेच्च सपत्नीकं पूजयेद् गुरुमाज्ञया । गुरोराज्ञां मूर्ध्नि धृत्वा एकधा प्रजपेद् यदि ।।
तदैव सहसा सिद्धिर्जायते वीर-वन्दिते ।।२२।।

अयुतं प्रजपेद् यस्तु किं तस्य शत - कोटिभिः । एवं तु प्रत्यहं कुर्याद् यावल्लक्षं समाप्यते ।।
दिवा लक्षं महेशानि ! पशु-वत् साधकाग्रणीः । रात्रौ लक्षं ततो जप्त्वा दिव्य-वीर-युतैः प्रिये ।।२३
समाप्य विधि-वद् भक्त्या गुरवे दक्षिणां ततः । दत्वा सिद्धिमवाप्नोति चन्द्र-सूर्य-ग्रहणे किम् ।।२४

हे देवि ! जो साधक उक्त विधि से पत्नी-सहित श्री गुरुदेव का पूजन कर सहस्र-दल-कमल के बीज-कोष के ऊपर उनकी भावना पत्नी के साथ करता है और गुरुदेव की अनुमति लेकर पूजन करता है, हे वीर-वन्दिते ! मात्र एक बार जप करने से ही उसे सहसा सिद्धि मिल जाती है । प्रतिदिन इस प्रकार करते हुए दस हजार मन्त्र-जप करे, जब तक कि एक लाख जप पूरे न हो जायँ । हे महेशानि ! दिन में पशु-भाव से एक लाख जप करे । तब हे प्रिये ! दिव्य-वीर-भाव से युक्त होकर रात्रि में एक लाख जप करे । विधिवत् अनुष्ठान पूर्ण कर गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान करे । इससे निश्चय ही सिद्धि मिलती है । चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में जप करने की आवश्यकता नहीं होती ।।२१-२४।।

गुरुं च भावयेन्नित्यं सदा - शिव - मयं सदा । गुरोः सुतं च चार्वङ्गि ! गणेश-सदृशं सदा ।।२५
गुरोः सुता वरारोहे ! वाणी लक्ष्मीर्यथा प्रिये ! गुरोः कुलं महेशानि ! भैरवाणां गणं यथा ।।२६

हे सुन्दरि ! गुरुदेव को सदा सदा-शिव - मय समझना चाहिये । गुरु-पुत्र को सदा गणेश के समान और गुरु-पुत्री को हे प्रिये ! सदा सरस्वती और लक्ष्मी के समान तथा गुरु के परिवार के लोगों को हे महेशानि ! भैरव के गण जैसा ही समझना चाहिए ।।२५-२६।।

एषा भक्तिर्महेशानि ! जायते यदि पार्वति ! तदा सिद्धो भवेद् देवि ! साधको यदि भक्तितः ।।२७
साधकस्यास्य चार्वङ्गि ! सिद्धिर्वै जायते ध्रुवा । इला-वर्षे महेशानि ! तस्य भोगः सु-निश्चितः ।।२८

हे महेश्वरि, पार्वति ! यह भक्ति-भावना यदि साधक में उसकी भक्ति के द्वारा उत्पन्न हो जाती है, तो निश्चिय ही उसे सिद्धि मिल जाती है और उसे स्वर्ग-सुख का भोग मिलना निश्चित हो जाता है ।।२७-२८।।

करवीरस्य चार्वङ्गि ! जवा-पुष्प - तलेषु च । विल्व-वृक्षस्य च तथा जप्त्वा मूले तू साधकः ।।२९
इला-वर्षे महेशानि ! स एव भोगमाप्नुयात् । भारतं भोग-रहितं कलौ संसर्ग-दोषतः ।।३०
अन्य-द्वीपे च वर्षे च एतेषां फलमुत्तमम् । प्रजायते महेशानि ! नान्यथा तु कदाचन ।।३१
करवीरं यथा देवि ! स्वयं काली न चान्यथा । उवाच चञ्चलापाङ्गि ! स्वयं त्रिपुर-सुन्दरी ।
विल्व-वृक्षस्तथा देवि ! भगवान् शङ्करः स्वयम् ।।३२

हे सुन्दरि, महेशानि ! जवा-पुष्प के वृक्ष के नीचे और बिल्व-वृक्ष के मूल-भाग में जप कर साधक निश्चय ही स्वर्ग का सुख-भोग प्राप्त करता है । कलि-युग में सङ्ग-दोष के कारण भारत स्वर्ग-सुख से रहित रहता है । हे महेशानि ! अन्य द्वीप और वर्ष में इनका उत्तम फल होता है, इसमें सन्देह नहीं । करवीर साक्षात् भगवती काली के समान है और विल्व-वृक्ष स्वयं भगवान् शङ्कर के समान, इसमें सन्देह नहीं । ऐसा स्वयं भगवती त्रिपुद-सुन्दरी ने कहा है ।।२९-३२।।

विल्व-वृक्ष-तले स्थित्वा यदि प्राणांस्त्यजेत् सुधीः ! तत्क्षणान्मोक्षमाप्नोति किं तस्य तीर्थ-कोटयः ।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तिष्ठन्ति मुक्ति-हेतवे ।।३३

विल्व-वृक्ष के नोचे बैठा हुआ साधक यदि प्राण त्याग करता है, तो उसी क्षण वह मोक्ष प्राप्त करता है । उसे करोड़ों तीर्थों की क्या आवश्यकता ! वहाँ ब्रह्मादि देवता तक मुक्ति के लिए उपस्थित रहते हैं ।।३३।।

विल्व-वृक्ष-तले स्थानं यदि विल्वादि-पूजितम् । तदेव शाङ्करं क्षेत्रं सर्व-तीर्थ-मयं यतः ।।३४
सर्व-पीठ-मयं तत् तु सर्व-देव-मयं सदा । न त्यजेच्छङ्कर-क्षेत्रं न च गङ्गां त्यजेत् प्रिये ।।३५

विल्व-वृक्ष के नीचे का स्थान विल्वादि से पूजित होकर शाङ्कर क्षेत्र बन जाता है, जो सभी तीर्थों से युक्त होता है । हे प्रिये ! वह सभी पीठों और सभी देवों से युक्त रहता है । उस शङ्कर-क्षेत्र को और गङ्गा को कभो न छोड़ना चाहिए ।।३४-३५।।

समीपे यस्य चार्वङ्गि ! विल्व-वृक्षो मनोहरः ।
काशी-पुर-समं तत् तु तत्र प्राणांस्त्यजेद् यदि । किं तस्य कोटि-तीर्थेन काशी-वासेन किं पुनः ।।३६
करवीर-जवा-मूले तुलसी नग-नन्दिनि ! यदि प्राणांस्त्यजेद् देवि ! माहात्म्यं तस्य सुन्दरि ।।३७
वक्त्र-कोटि-सहस्रेण जिह्वा-कोटि-शतेन च । कथितुं तस्य माहात्म्यं न शक्नोमि कदाचन ।।३८

हे सुन्दरि ! जिसके निकट मनोहर विल्व-वृक्ष है, वह काशीपुर के ही समान है । वहाँ यदि वह प्राण छोड़ता है, तो उसे करोड़ों तीर्थों या काशी में रहने की क्या आवश्यकता ! हे पर्वत-पुत्रि ! करवीर, जवा और तुलसी के मूल-भाग में यदि प्राण छोड़े, तो हे देवि सुन्दरि ! उसका माहात्म्य कहने में मैं करोड़ों सहस्र मुखों और करोड़ों शत जिह्वाओं से भी कभी समर्थ नहीं हो सकता ।।३६-३८।।

शुक्लं रक्तं तथा पीतं हरितं कृष्णमेव वा । करवीरं महेशानि ! जवा-पुष्पं तथैव च ।।३९
स्वयं काली महा-माया स्वयं त्रिपुर-सुन्दरी । अत्र द्वैधं न कर्त्तव्यं कर्त्तव्ये नरकं व्रजेत् ।।४०
यदि प्राणांस्त्यजेत् पीठे तीर्थे वा नग-नन्दिनि ! तथापि चञ्चलापाङ्गि ! अवश्यं नरकं व्रजेत् ।।४१

हे महेशानि ! श्वेत, रक्त, पीत, हरित या कृष्ण करवीर और जवा पुष्प साक्षात् महा-माया त्रिपुर-सुन्दरी, काली-स्वरूप ही हैं । इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की दुविधा (शङ्का) या भेद-भाव न करना चाहिए । जो करता है, वह नरक में जाता है । भले ही वह किसी पीठ या तीर्थं में निवास करता हो किन्तु उस दुविधा के कारण उसे अवश्य नरक में जाना पड़ता है ।।३९-४१।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

एकं पृच्छामि भो देव ! रहस्यं वद साम्प्रतम् । सहस्रारस्य यन्मूलं कृपया वद चेश्वर ।।४२

श्रीदेवी ने कहा—हे देव, हे ईश्वर ! एक रहस्य की बात पूछती हूँ । सहस्रार का जो मूल है, उसे बताइये ।।४२।।

।। श्रीमहा-देव उवाच ।।

श्रृणु सुन्दरि ! यद् गुह्यं रहस्यं वद साम्प्रतम् । मूलाधारे महेशानि ! पृथ्वी-बीजं च मूर्ति-मत् ।।४३
सहस्रारस्य तन्मूलं मृणालं चित्रिणी यतः । सहस्र - दल - संयुक्तं कुण्डली-ग्रन्थि - संयुतम् ।
सदा अधोमुखं पद्मं बीजमूर्ध्व-मुखं सदा ।।४४

श्रीमहा-देव ने कहा—हे सुन्दरि ! इस सम्बन्ध में जो योग-सम्मत गुप्त रहस्य है, उसे सुनो । हे महेशानि ! मूलाधार-चक्र में पृथ्वी-बीज (लं) विराजमान है । वही सहस्रार का मूल है क्योंकि चित्रिणी नाड़ी मृणाल या कमल-नाल है और उसके द्वारा कुण्डली की ग्रन्थियों से सहस्र-दल-कमल जुड़ा हुआ है । वह कमल सदा अधोमुख रहता है और उसका बीज-कोष सदा ऊर्ध्व-मुख रहता है ।।४३-४४।।

एतत कथितं ज्ञानं सुषुम्ना-मार्ग - संस्थितम् । यन्न कस्यचिदाख्यातं साधकाय शिवाज्ञया ।।४५
दश-विद्या महेशानि ! यो जपेन्नर - सत्तमः । फलस्तस्य प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।।४६
भुक्त्वा मनोरथान् कामान् ततो मोक्ष-पुरं व्रजेत् ।।४७

हे महेशानि! सुषुम्ना-मार्ग में स्थित यह ज्ञान मैंने तुमसे कहा, जो किसी भी साधक को नहीं बताया है । जो श्रेष्ठ मनुष्य दश-विद्या के मन्त्र का जप करता है, उसका फल बताता हूँ । मनचाही इच्छाओं का भोग करने के बाद वह मोक्ष-पुरी में निवास करता है ।।४५-४७

नहि भोगं बिना देवि ! जायते मोक्षमव्ययम् । अतएव महेशानि ! कृत्वा भोगं सु-दुष्करम् ।।४८
महा-मोक्षं ततो गत्वा शिव-शक्ति-मयो भवेत् । शिव-शक्ति-मयं यत् तु महा-मोक्षं तदुच्यते ।।४९

हे देवि ! बिना भोग किए, अव्यय मोक्ष नहीं मिलता । अतएव हे महेशानि ! अति कठिन भोगों को सम्पन्न करने के बाद ही परम मोक्ष मिलता है और तभी शिव-शक्ति से तादात्म्य होता है । शिव-शक्ति-मय होना ही परम मोक्ष कहलाता है ।।४८-४९।।

महा-मोक्षं बिना देवि ! मम ज्ञाने न युज्यते । अनन्त-शक्ति-संयुक्तं महा-मोक्षं नगात्मजे ।।५०
दक्ष-नेत्र - युतो वापि यदाऽहं नग-नन्दिनि ! तदैवाहं वरारोहे ! भवामि सुर -पूजितः ।
तदैव सहसा देवि ! शिवोऽहं नान्यथा क्वचित् ।।५१

हे देवि ! परम मोक्ष के बिना मेरा ज्ञान नहीं मिलता । हे पार्वति ! परम मोक्ष अनन्त शक्ति से युक्त है । जब मैं दक्ष-नेत्र (इ) से युक्त होता हूँ, तभी हे सुन्दरि ! मैं देव-पूज्य बनता हूँ । तभी हे देवि ! मैं शिव-स्वरूप होता हूँ, अन्यथा कभी नहीं ।।५०-५१।।

यदा भवाम्यहं देवि ! रहितो दक्ष अक्षणा । तदैव सहसा भद्रे ! शवोऽहं सततं सदा ।।५२
कला-रूपेण सा देवी भवेद् ब्रह्म-स्वरूपिणी । इति ते कथितं सर्वं तव स्नेहाद् वरानने ।।

हे देवि भद्रे ! मैं जब दक्ष नेत्र से रहित होता हूं, तब मैं सदा निरन्तर शव समान रहता हूँ । कला-रूप में वही देवी साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपिणी है । हे सुमुखि ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे स्नेह से सब कुछ कहा है ।।५२।।

।। इति पुरश्चरण-रसोल्लास-तन्त्रे देव-देवी-सम्वादे दीक्षा-वर्णन-प्रसंगे पञ्चमी-माहात्म्यम् नाम दशमः पटलः ।।

प० पू० तपस्वी कल्याण बाबा उदासीन महाराज

श्री हनुमान वकील

हिमालय के अल्मोड़ा जनपद के अन्तर्गत एक गाँव में कुलीन ब्राह्मण-परिवार में लगभग पचास वर्ष पूर्व आपका जन्म हुआ। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही आपने समस्त सांसारिक वैभवों को तिलाञ्जलि देकर वैराग्य एवं तितिक्षा के कठोर मार्ग का अवलम्बन लिया। पूर्व-जन्म के संस्कार या ईश्वर की अहैतुकी कृपा के फल-स्वरूप आपको महान् सन्त मङ्गल-मूर्ति परमहंस स्वामी स्वरूपदासजी महाराज उदासीन सदृश गुरु मिले और उनसे दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ऋषिकेश और नेपाल के गहन वनों में निरन्तर ६ वर्ष साधना की। बाबाजी केवल कौपीन धारण किए खुले आकाश तले सर्दी, गर्मी और वर्षा में निर्विघ्न साधना-लीन रहे। तत्-पश्चात् समस्त भारत के दुर्गम वन्य एवं पहाड़ों में पैदल यात्रा करते रहे तथा सभी तीर्थों के दर्शन किए। १९६२ में आपने पावन-सलिला माँ नर्मदा की विधिवत् परिक्रमा की और इसी अवधि में आपको ईश्वर अथवा सत्य का साक्षात्कार हुआ तथा दिव्य प्रकाश-पुञ्ज के अवलोकन से आप अभिभूत हो गए। आपकी कठोर तपस्या निरन्तर चलती रही और आपको अनुभूति हुई कि प्राणी-मात्र की सेवा ही सच्ची ईश्वरोपासना है।

माँ नर्मदा की प्रेरणा से सुरम्य पावन तप-स्थली में आपने आश्रम का निर्माण करना प्रारम्भ किया, जिसका मुख्य उद्देश्य रहा प्राणी-मात्र की अधिकाधिक सेवा और साथ ही सन्त, महात्मा, साधक तथा श्रद्धालु भक्त-जनों को समुचित सुविधायें उपलब्ध कराना। देखते-ही-देखते आश्रम बनकर तैयार हो गया और "कल्याण सेवा आश्रम, अमरकण्टक, जिला शहडोल (म. प्र.)" के नाम से ट्रस्ट बनाकर आपने उसके संचालन का भार उसे सौंप दिया।

आश्रम में बिना किसी भेद-भाव के अभ्यागत सभी साधु-सन्तों को निःशुल्क आवास, भोजन, चिकित्सा आदि सुविधाएँ उपलब्ध हैं। परिक्रमा-वासियों के लिए अन्न-क्षेत्र; तीर्थ-यात्रियों को आवास-भोजन-चिकित्सा; कमजोर तथा पिछड़े वर्ग के छात्रों हेतु छात्रावास, निःशुल्क भोजन-वस्त्र-ओषधि एवं समस्त शैक्षणिक सुविधायें और गरीब एवं असहायों हेतु निःशुल्क अस्पताल तथा डाक्टर-औषधि सदैव सुलभ हैं। सेवा के विस्तार हेतु बाबाजी निरन्तर प्रयास-रत हैं और उनके भक्त-जन उड़ीसा, बङ्गाल, बिहार, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आसाम, काश्मीर आदि स्थानों से तन-मन-धन से इस सत्-सङ्कल्प हेतु सहयोग प्रदान करते हैं।

बाबाजी सदा मधुर बाल-मुस्कान से सभी को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। अपने अमृत-वचनों से धर्म तथा कर्म की तात्त्विक एवं सार-गर्भित विवेचना करते हैं। आप आज भी उसी प्रकार कौपीन धारण किए अपने सङ्कल्प की ओर अग्रसर हैं। ऐसी दिव्य विभूति के दर्शन मात्र से सभी चिन्ताएँ दूर होकर सन्तोष तथा शान्ति की प्राप्ति होती है।

आज के भौतिक-वादी संसार में शान्ति की सर्वत्र खोज हो रही है, पर बाबाजी निरन्तर शान्ति का प्रवाह कर रहे हैं। ऐसे कठोर तपस्वी और निरहङ्कार कर्म-योगी अवश्य ही दुर्लभ हैं। स्वयं फलाहार लेते हैं, पर सबका पूरा ध्यान रखते हैं। चमत्कार में बाबाजी कभी विश्वास नहीं करते। उदासीनाचार्य जगद्गुरु भगवान् श्री चन्द्रदेवजी के द्वारा प्रतिपादित पञ्च-देवोपासना एवं वैदिक धर्म में आपकी दृढ़ आस्था है। निश्चय ही भारत को ऐसे महान् सन्त पर गर्व है।

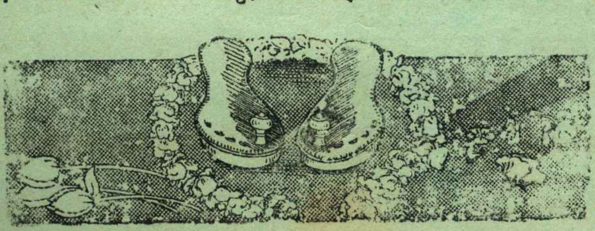

रजि० सं० ३२६८१/५७]   फरवरी-मार्च १६८६   [रजि० सं० ए० डी० ६६

भगवती दुर्गा नाम-माहात्म्य

सर्व-शक्तियाँ श्रीदुर्गा-स्वरूप ही हैं। 'मुण्ड-माला तन्त्र' के द्वितीय पटल में 'श्रीदुर्गा-नाम-माहात्म्य' कहा गया है। यथा--'दुर्गा-पूजा' के समान न तो कोई पूजा है, न ही दुर्गा के समान कोई जप है, न ही दुर्गा के समान तप है। श्री दुर्गा का चरित जहाँ-जहाँ सुनाया जाता है, वहीं 'कैलास-मन्दिर' है।

'मुण्ड-माला-तन्त्र' के तृतीय पटल में कहा है—दुर्गा-स्मरण से भू-तल में क्या नहीं सिद्ध होता है ? शैव हो या शाक्त हो, या वैष्णव हो, हे पार्वति ! सभी को दुर्गा को ही भजना चाहिए। दुर्गा का ही स्मरण करना चाहिए। शक्ति-ज्ञान बिना मुक्ति की प्राप्ति हास्य की कथा है।

हे देव-देवेशि ! जो दुर्गा-नाम जपता है, वह तत्क्षण भव - बन्धन से मुक्त हो जाता है। हे पार्वति ! दुर्गा के विभिन्न मन्त्रों के सम्बन्ध में तुमने तन्त्र-ग्रन्थों में सुना है किन्तु "दुर्गे" नाम ही परम मन्त्र है। जो इसे सतत भजता है, वह मनुष्य जीवन में ही मुक्त हो जाता है। 'दुर्गे-दुर्गे' इस परम मन्त्र को जो घोर सङ्कट में १०० बार जपता है, वह सर्व-सङ्कटों से मुक्त हो जाता है।

महा-उत्पात में, महा-रोग में, महा-सङ्कट में, महा-दुःख में, महा-शोक में, महा-भय में जो सदा 'दुर्गे-दुर्गे' स्मरण करता है, वह हे देवेशि ! इस लोक में साक्षात् 'शिव-स्वरूप' हो जाता है।

जो एकाग्र चित्त से 'दुर्गे-दुर्गे' परम मन्त्र को जपता है, वह दुर्गा को प्रत्यक्ष करने में समर्थ हो जाता है। 'मुण्ड-माला तन्त्र', चतुर्थ पटल में कहा है कि श्रद्धा या अश्रद्धा से कोई भी मनुष्य दुर्गा-नाम स्मरण करता है, तो वह शत (१००) बाधाओं को पार कर परम गति को प्राप्त होता है।

'मुण्ड-माला तन्त्र', सप्तम पटल में कहा है—हे देवि ! तन्त्रों के विभिन्न मत से विभिन्न रत्न प्रकाशित हैं। ब्रह्म-स्वरूप को जानने के लिए इस मही-तल में कौन समर्थ है ? हत-बुद्धि लोग जब विभिन्न मार्गों से धनवान् होते हैं, तब वे मोह-वश होकर श्री दुर्गा के चरण-कमलों को छोड़कर रसातल में जाते हैं। दुर्गति से रक्षा करने के कारण अथवा दुर्गम दुःखों से त्राण करने के कारण एवं दुर्ग नामक दैत्य का वध करने के कारण इसको 'दुर्गा' कहते हैं।

--'कौलाचार्य' पं० नथमल दाधीच, लक्ष्मणगढ़, सीकर, राजस्थान

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक : ऋतशील शर्मा, एम० ए०